"जी करता है,
सीखूं मैं बन्दूक चलाना
जी करता है,
सीखूं मैं फौलाद गलाना
जी करता है,
जन-जन में भड़काऊं शोले
जी करता है
नेफा पहुँच, दागूं गोले।"
-नागार्जुन

संपादक
**बृजेन्द्र अग्निहोत्री**

# मधुराक्षर

**सामाजिक, सांस्कृतिक व साहित्यिक पुनर्निर्माण की पत्रिका**

**जनवरी–मार्च 2017**
वर्ष : 09, अंक : 01, पूर्णांक : 26

**मूल्य**

| | |
|---|---|
| एक प्रति | : 30 रुपये |

**व्यक्तियों के लिए**

| | |
|---|---|
| वार्षिक | : 110 रुपये |
| त्रैवार्षिक | : 300 रुपये |
| आजीवन | : 2500 रुपये |

**संस्थाओं के लिए**

| | |
|---|---|
| वार्षिक | : 150 रुपये |
| त्रैवार्षिक | : 450 रुपये |
| आजीवन | : 5000 रुपये |

**विदेशों के लिए (हवाई डाक)**

| | |
|---|---|
| एक अंक | : 6 $ |
| वार्षिक | : 24 $ |
| आजीवन | : 300 $ |

सदस्यता शुल्क का भुगतान भारतीय स्टेट बैंक की किसी शाखा में 'मधुराक्षर' के बैंक खाता क्रमांक **31807644508** (IFS Code- SBIN0005396, MICR Code - 212002004) में करें। फतेहपुर से बाहर के चेकों व बाह्य-अन्तरण में बैंक शुल्क रुपये 50 अतिरिक्त जमा करें।

मधुराक्षर में प्रकाशित सभी लेखों पर संपादक की सहमति हो, यह आवश्यक नहीं है। प्रकाशित सामग्री की सत्यता व मौलिकता हेतु लेखक स्वयं जिम्मेदार है। पत्रिका में प्रकाशित किसी भी लेख पर आपत्ति होने पर उसके विरुद्ध कार्यवाही केवल फतेहपुर न्यायालय में होगी।

**मुद्रक, प्रकाशक एवं स्वामी बृजेन्द्र अग्निहोत्री द्वारा स्विफ्ट प्रिन्टर्स, 259, कटरा अब्दुलगनी, चौक, फतेहपुर से मुद्रित कराकर जिला कारागार, मनोहर नगर फतेहपुर (उ.प्र.) 212601 से प्रकाशित।**

# मधुराक्षर

**सामाजिक, सांस्कृतिक व साहित्यिक पुनर्निर्माण की पत्रिका**

**जनवरी—मार्च 2017**

संपादक
**बृजेन्द्र अग्निहोत्री**

सह संपादक
**डॉ. प्रशांत द्विवेदी**
**डॉ. उत्तम कुमार शुक्ल**

प्रबंध संपादक
**डॉ. ऋचा द्विवेदी**

संपादकीय कार्यालय
**जिला कारागार के पीछे, मनोहर नगर, फतेहपुर (उ.प्र.) 212601**

E-Mail : madhurakshar@gmail.com
Visit us : www.madhurakshar.blogspot.com
www.facebook.com/agniakshar

चलित वार्ता
**+91 9918695656**

# एक नज़र में..


**संपादकीय**

बृजेन्द्र अग्निहोत्री : अपनी बात 04

**कलम को नमन**

जयशंकर प्रसाद : **प्रणय चिह्न (कहानी)** 21

रामधारी सिंह 'दिनकर'

**परंपरा को अंधी लाठी से मत पीटो (कविता)** 25

**कविताएं**

प्रेम नंदन 26

डॉ. प्रशांत द्विवेदी 27

शिवशरण सिंह चौहान 'अंशुमाली' 27

सत्येन्द्र कुमार 27

सपना मांगलिक 28

तेजराम शर्मा 29

रविरश्मि 'अनुभूति' 29

शबनम शर्मा 30

डॉ. बालकृष्ण पाण्डेय 31

**कहानियां/लघुकथाएं**

हरिप्रकाश राठी : **कंदराएं** 06

पद्मा मिश्रा : **प्रतीक्षा** 10

सविता मिश्रा : **आस्था** 12

सीमा 'असीम' सक्सेना : **क्यों, सिया ही क्यों ?** 13

अर्नेस्ट हेमिंग्वे (अनुवादक – सुशांत सुप्रिय) : **दूसरे देश में** 17

**शोध लेख/आलेख**

डॉ. हितेन्द्र कुमार मिश्र : हिंदी पत्रकारिता और जन–विश्वास 32

डॉ. अश्विनीकुमार शुक्ल : हिंदी पत्रकारिता में भाषा का स्वरूप 37

डॉ. संगीता देवी : डॉ. वेदप्रकाश शर्मा 'अमिताभ' के कथा साहित्य में..... 42

डॉ. प्रीती यादव : 'कस्तूरी कुण्डल बसै' में अभिव्यक्त स्त्री–जीवन 44

रितु अहलावत : 'दोहरा अभिशाप' में अभिव्यक्त स्त्री की सामाजिक स्थिति 47

सरोज अहिरवार : संत रैदास के काव्य में निहित निर्गुण भक्ति 49

राम सुभाष : सिनेमा और समाज 51

# अपनी बात

चीनी यात्री ह्यू–एन–त्सांग ने नालंदा विश्वविद्यालय में शिक्षा पूर्ण कर कुछ दिनों तक वहीं अध्यापन–कार्य भी किया। कुछ समय के पश्चात् उसने स्वदेश जाने का निश्चय किया। जब अन्य चीनी विद्यार्थियों को इस सम्बन्ध में जानकारी हुई तो उनमें से पंद्रह विद्यार्थी भी ह्यू–एन–त्सांग के साथ चल पड़े, जिससे उनके सत्संग का लाभ वे उठा सकें। ह्यू–एन–त्सांग ने नालंदा विश्वविद्यालय में अध्यापन करते हुए कुछ ग्रंथ क्रय किये थे और कुछ ग्रंथों की रचना भी कि थी, उन्होंने सभी ग्रंथों को भी अपने साथ ले जाने का निश्चय किया। एक नौका तय की गयी, और वे सभी ग्रंथों के साथ वहां से चल पड़े. दुर्भाग्य से रास्ते में भयानक तूफान आ गया जिससे नौका हिंडोले खाने लगी। नाविक ह्यू–एन–त्सांग से बोला– 'महाशय, यह नाव भरी हो गयी है। आगे जाना मुश्किल है। कृपया ये मोटे ग्रंथ फेंक दें, जिससे हम सब का जीवन बच सके।' ह्यू–एन–त्सांग असमंजस में आ गए। इतने में एक विद्यार्थी खड़ा हुआ और बोला– 'गुरुदेव, इन ग्रंथों को मत फेंकियेगा, क्योंकि ये ज्ञानामृत से परिपूर्ण हैं, जिनका उपयोग हमारे देशवासी कर सकेंगे। हम यदि स्वदेश न भी पहुंचे तो भी इससे किसी का ज्यादा नुकसान नहीं होने वाला है।' यह कहकर उसने अपने साथियों कि ओर देखा और सारे के सारे विद्यार्थी बिना हिचक नाव से कूद गये।

ज्ञान के महत्व को समझने वाले व्यक्ति से यही अपेक्षा की जाती है कि वह स्वयं से पूर्व समाज–हित की भावना को महत्त्व दे। साहित्य को ज्ञान की अंतःसलिला और साहित्यकार की लेखनी को ज्ञान–स्रोत होने का गौरव प्राप्त है। साहित्यकार बिना किसी स्वार्थ के अपने परिवेश और समय के सापेक्ष अपनी लेखनी को धार देता है सहर्ष कहता है– 'सारा लोहा उन लोगों का, अपनी केवल धार!'

अब यहाँ प्रश्न यह खड़ा होता है कि यह 'उन लोगों' हैं कौन? अगर वर्तमान संदर्भों में 'उन लोगों' की खोज करें तो निःसंदेह 'उन लोगों' में सबसे पहले वे रचनाकार आयेंगे जो व्यवस्था के साथ सामंजस्य बिठाकर अपने स्वार्थों की पूर्ति कर रहे होते हैं। सम्मान, पुरस्कार, बड़े पद और बड़े साहित्यकार होने का गौरव भी तो इन्हीं के हिस्से आता है!....सारा लोहा इन लोगों का....! लेखनी को सार्थकता प्रदान कर उसे 'धार' देने  वाले रचनाकारों को तो अनेक बार 'साहित्यकार' के रूप में पहचान भी नहीं मिल पाती है, जीते जी तो कम ही उम्मीद होती है! अगर पहचान मिलती है तो अपने गाँव या शहर के दायरे से वह निकल नहीं पाती। 'उन लोगों' ने साहित्यिक समाज में अवधारणा सी विकसित कर दी है कि– साहित्य का सृजन और साधना करने के लिए 'दिल्ली' जैसे बड़े शहरों में निवास करना आवश्यक है। दिल्ली जैसे बड़ों शहरों में विकसित साहित्यिक परंपरा के लोग अगर ह्यू–एन–त्सांग के साथ होते तो तूफान आने पर वे पहले अपने गुरु ह्यू–एन–त्सांग को नदी में फेंकते, जिससे अपने देश में जाकर उन ग्रंथों के सृजन और संचयन का श्रेय वे स्वयं ले सकें। अगर नाव फिर भी संतुलित न होती तो ग्रंथों को फेंक देने में भी उन्हें कोई हिचक नहीं होती।
समसामयिक हिंदी साहित्य में इसी विचारधारा से जुड़े लोगों की संख्या दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। बिना किसी सार्थक कारण के मात्र विरोध के लिए विरोध करना, इनकी विचारधारा का एक महत्वपूर्ण अंग है।

नवें वर्ष का प्रथम अंक आपके सामने प्रस्तुत करते हुए हर्ष भी हो रहा है, और आश्चर्य भी! हर्ष 'मधुराक्षर' के आठ वर्ष पूर्ण होने का, और आश्चर्य इसलिए कि इस आठ वर्ष की अवधि में एक–दो अंकों के अतिरिक्त हमें संयुक्तांक नहीं निकालने पड़ें। निःसंदेह आप सभी के सहयोग के बिना यह संभव नहीं था। आप सभी के सहयोग से ही आज 'मधुराक्षर' को न केवल राष्ट्रीय, अपितु अन्तराष्ट्रीय फलक पर पहचान मिली है। वर्तमान समय में भारत के सभी राज्यों में 'मधुराक्षर' के पाठक तो हैं ही, साथ ही कनाडा, लंदन, न्यूयार्क, मारीशस और चीन में भी 'मधुराक्षर' की कुछ प्रतियाँ जा रही हैं। उम्मीद है ये कारवां बढ़ता रहेगा.....! आप सभी का सहयोग मिलता रहेगा..!

**–बृजेन्द्र अग्निहोत्री**

**कहानी**

# कंदरायें....

हरिप्रकाश राठी

**अगर** मैं यह कहूं कि काली आंखें, गोरा रंग, तीखे नक्श एवं मतलब–बेमतलब बात–बात पर हँसने वाली लड़की का नाम पद्मा है तो गलत नहीं कह रहा। सचमुच ये सभी बातें उसमें मौजूद थी। लेकिन जैसे चांद में दाग है पद्मा में भी एक ऐसा दोष था जिसे मैंने कई बार महसूस किया था। कई बार वह बिना कारण इतना गंभीर एवं उदास हो जाती कि समझना मुश्किल था, क्या यह वही पद्मा है जिसकी खिलखिलाहट भोर में धूप खिलने अथवा स्याह बादलों में बिजली चमकने का अहसास देती है।

मैं उसके लिए कोई एक उपमा नहीं दे सकता। कभी वह मुझे जामुन की तरह लगती जो ऊपर से कोमल एवं भीतर से कठोर होता है तो कभी उस अखरोट की तरह जो ऊपर से कठोर एवं भीतर से कोमल होता है। मैं उसे जितना समझने की कोशिश करता, उतना ही कन्फ्यूज होता। कई बार वह मुझे एक सरल रेखा की तरह तो अनेक बार उस अष्टकोण की तरह लगती जिसकी परिधि मापना कठिन है। निःसंदेह उसके रूप की तुलना चांद से की जा सकती है, फिर अनेक बार यह मेहताब मुझे आफताब क्यों लगता था?

क्या चांद में मात्र दाग है या फिर कोई आग भी है? किसे पता है सतह से सुंदर दिखने वाला चांद भीतर कितनी आग छुपाये है?

वह मेरी बहन स्वाति की सहपाठी एवं सहेली थी तथा उन दिनों अक्सर घर आती थी। मुझे नहीं मालूम मैं उसकी तरफ आकर्षित था अथवा नहीं, पर जैसे हर युवक सुंदर एवं बुद्धिमान युवती को देखकर प्रमुदित होता है, मैं भी उसे देखकर प्रसन्न होता था। स्वाति जब मुझे कहती कि आज फलां समय पर पद्मा आएगी तो मैं कोई न कोई बहाना कर उस समय घर पर ही रहता। तब वह मुझसे तीन वर्ष छोटी अर्थात् बाईस की थी। इस उम्र के दो युवक–युवती अगर अक्सर मिलते हों तो उनमें आकर्षण स्वाभाविक है।

मेरी उससे अनेक मुद्दों पर बहस हो जाती। मैं दम लगाकर जीतने का प्रयास करता, हर मुद्दे पर दमदार तर्क जुटाता पर अंत में मुझे यही लगता कि वह क्लीन स्वीप कर गई है। मेरी शिकस्त हर बार मेरे अहम् को चुनौती देती, मैं पुनः अगली बहस में उसे पटकनी देने का प्रयास करता पर उसकी विद्वत्ता, नजरिये एवं तीखे तर्कों के आगे हर बार धूल चाटता। वह जितनी विद्वान थी उससे कहीं अधिक दृढ़ भी थी। अनेक बार तो मैं कोफ्त में उसे कह भी देता, तुम्हारी जैसी जिद्दी लड़की अन्यत्र मिलना मुश्किल है। तब एक उन्मुक्त हंसी बिखेरते हुए वह सारी बात यूं समेट लेती जैसे औरतें बिखरे हुए राई के दाने समेट लेती हैं।

एक दिन स्वाति ने जब बताया कि पद्मा ने एमबीबीएस टॉप किया है तो मैं उसकी प्रतिभा का कायल हो गया। मैं अब उसमें एक ऐसी स्वप्नसुंदरी देखने लगा जिसे पाना हर युवक अपना सौभाग्य समझता है।

आखिर मैंने स्वाति से मेरा मन बांट ही लिया। मेरी बात सुनकर स्वाति ने दांतों तले अंगुली दबाकर कहा, 'रितेश! क्या तुम जानते हो उसका परिवार शहर के प्रमुख संपन्न परिवारों में है एवं उसके पिता इस रिश्ते की कभी इजाजत नहीं देंगे, तो मैं चुप कर गया।

लेकिन मेरे मन में उथल–पुथल मची थी। क्या एक अमीर लड़की का एक साधारण घर में परिणय नहीं हो सकता ? फिर पद्मा से मेरा परिणय क्यों संभव नहीं है? रूप–गुण भी तो कोई चीज है। हो सकता है वह मेरे गुणों पर रीझ जाए।

एक बार दोपहर चार बजे वह आई तो मैं घर पर अकेला था। उसे देखते ही मेरी बांछें खिल गई। उस दिन हम देर तक बतियाते रहे। बात करते हुए बीच–बीच में, वह खिलखिलाकर हंसती, तो मेरे कर्ण पटल खनकने लगते।

जीवन के कार्य साहस से ही संपादित होते हैं। मृगी शेर के मुख में स्वयं नहीं आती, शेर को इसके लिए उद्योग करना होता है। मैंने साहस कर उसे कह ही दिया, 'पद्मा! मैं तुम्हें चाहने लगा हूं एवं तुमसे विवाह करने का इच्छुक हूँ। कई दिनों से, मैं, तुम्हें कहने न कहने के असमंजस में झूल रहा था, पर लगा आज तुम्हारा मन टटोल ही लूं। तुम हम एक दूसरे को कई वर्षों से जानते हैं, दोनों सुशिक्षित है फिर जीवन–साथी क्यों नहीं हो सकते?'

मेरी बात सुनकर पहले तो वह जोर से हंसी फिर धीरे–धीरे उसके चेहरे पर रोष उभरने लगा। पल भर सोचकर वह एक बार पुनः मुस्कुराई एवं इस बार इतना जोर से हंसी कि उसकी खिलखिलाहट से घर गूंज उठा। उसके बदलते व्यवहार को देखकर मुझे सांप सूंघ गया। मेरी आंखों में पहेलियों–सा रहस्य उतर आया।

मैं कुछ कहता उसके पहले ही वह बोली, 'काश! मैं तुम्हें हां कहती पर ऐसा करना मेरे लिए संभव नहीं है। तुम अच्छे मित्र हो एवं सदैव रहोगे, लेकिन तुमसे विवाह के लिए मैं हां नहीं कह सकती। मेरी अपनी मजबूरियां एवं विवशताएं हैं, कदाचित् तुम उन्हें समझ सको।' इतना कहकर वह तेजी से उठकर चली गई।

उसके जाते ही मुझे लगा बिना मतलब उड़ता तीर ले लिया। अकारण एक रिश्ता चौपट हो गया। अब स्वाति को क्या जवाब दूंगा ? क्या अब वो हमारे घर आएगी ? अगर आएगी तो क्या मैं उसे उन्हीं सरल एवं पवित्र आंखों से देख सकूंगा ? मैं स्वयं को कोसने लगा। अक्ल क्या घास चरने गई थी ? क्या तुममें इतनी भी समझ नहीं कि तुम सोच पाते कि ब्याह–बाजे तो बराबरी में ही शोभा देते हैं। राजकुमारियों ने क्या कभी फकीरों के गले में वरमाला डाली है ? मेरे स्थिति चौबेजी छब्बेजी बनने गए पर दुबेजी बनकर लौटने वाली थी।

सचमुच वह दस दिन हमारे घर नहीं आई। दस दिन बाद मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब वह स्वाति के साथ न सिर्फ हमारे घर आई, उसके हाव–भाव से भी ऐसा नहीं लगा कि हमारे बीच

ऐसी कोई बात हुई है। अपनी बिंदास हंसी से असामान्य स्थितियों को सामान्य बनाने में उसे महारथ हासिल था। मेरे मन का बोझ तब और हल्का हो गया जब उस दिन जाते हुए मुझे एक तरफ ले जाकर उसने कहा, 'टेंशन नहीं लेने का। मैंने स्वाति को कुछ नहीं बताया है।' मैं हैरान रह गया। सचमुच वह कितनी महान थी।

कुछ समय बाद एक विदेशी कंपनी में मेरी नौकरी लगी। नौकरी की शर्तों के तहत प्रथम दस वर्ष मुझे लंदन में रहना था। विदेश जाने की ललक एवं मोटी पगार के लोभ को मैं संवरण न कर पाया एवं वहां जाकर नौकरी करने का मानस बना लिया। भारी मन से स्वाति, मां एवं बाबूजी ने मुझे विदा किया।

एक वर्ष पश्चात् स्वाति के विवाह पर मैं बीस दिन का अवकाश लेकर आया। स्वाति का विवाह धूमधाम से हुआ पर उसमें पद्मा नहीं आई। पूछने पर स्वाति ने बताया कि उसकी नौकरी वाशिंगटन के किसी प्रख्यात अस्पताल में लगी है एवं पद्मा अपने घर वालों के तमाम विरोध के बावजूद वहां चली गई है। मुझे समझ नहीं आया कि इतनी सरल एवं स्पष्ट कहने वाली लड़की भी क्या इतना विरोध कर सकती है?

स्वाति के विवाह में एक अजीब इत्तफाक हुआ। उसकी विदाई के समय हमारे समधी ने मेरे पिता के आगे एक अजीब–सा प्रस्ताव रख दिया। हमारे सद्व्यवहार से अभिभूत स्वाति के श्वसुर ने उनकी पुत्री सुनंदा के, मुझसे विवाह का कौल, मेरे पिता से ले ही लिया। सुनंदा सुंदर, सुशील एवं सुशिक्षित लड़की थी, मैं ना कैसे कर सकता था। इस अतिरिक्त रिश्ते से घर की खुशियां दूनी हो गई। बाद में स्वाति के श्वसुर मेरे देश छोड़ने से पूर्व विवाह पर अड़ गए। आखिर सुनंदा से मेरा विवाह हुआ एवं मैं लंदन सुनंदा के साथ ही लौटा।

नदी के पानी की तरह समय अनवरत बहता रहा। जीवन की आपाधापी में दस वर्ष बीत गए। इस दरम्यान दो बेटों का बाप भी बन गया। सुनंदा ने इतने कौशल से मेरी गृहस्थी संभाली कि हमारा प्यार पूर्णमासी के चन्द्र की तरह अनुदिन बढ़ता गया।

इन्हीं दिनों सुनंदा के पिता के निधन का दुःखद समाचार मिला। हम सभी पहली फ्लाईट से इण्डिया आए। इस घटना के कुछ रोज बाद मैं कुछ आवश्यक सामान खरीदने बाजार गया तो मुझे वहां पद्मा दिखी। उस दिन मैं अकेला ही था। हम दोनों ने एक दूसरे को एक साथ देखा एवं अपलक एक दूसरे से वहीं लिपट गए। आश्चर्यमुग्ध मैंने पूछा, 'तुम यहां कैसे ?'

'मैं गत एक वर्ष से यहीं हूं। अब यहीं एक अस्पताल खोल लिया है एवं उसी में व्यस्त रहती हूं। तुम कैसे हो ?' वर्षों बाद बतियाने की खुशी में उसकी आंखों की चमक देखने लायक थी।

'आई एम फाइन! आओ सामने वाले रेस्ट्रां में कॉफी पीते हैं। तुमसे ढेर सारी बातें करनी है। वहीं बैठकर तसल्ली से बातें करेंगे।' उससे बात करने की इच्छा मेरे हृदय में उफान लेने लगी थी।

रेस्ट्रां में हम दोनों टेबल के आमने–सामने बैठे थे। पद्मा उसी चिर–परिचित अंदाज में गाहे–बगाहे ठहाके लगा रही थी। वह जब भी हंसती, रेस्ट्रां की मंद रोशनी में उसकी स्वच्छ दंतपंक्ति मोतियों–सी चमक उठती। उसकी हंसी में आज भी वहीं खनक थी। आज भी वह उतनी ही बेबाक, पारदर्शी एवं बिंदास थी।

स्वाति ने मुझे बता दिया था कि तमाम विरोधों के बावजूद पद्मा ने ताउम्र कुंवारा रहने का निर्णय लिया है तो मुझे आश्चर्य भी हुआ और दुःख भी। आखिर कोई लड़की ऐसा निर्णय लेकर दुःख के अहर्निश कुण्ड में क्यों जलना चाहती है ? क्या उसका कोई प्रेम–प्रसंग तो असफल नहीं हो गया ? यह भी हो सकता है किसी अन्य अपरिहार्य कारणों से उसे ऐसा करना पड़ा हो ? वह मूर्ख तो नहीं है। कहीं उसे कोई गंभीर रोग तो नहीं लग गया ?

यकायक मेरे मन–मस्तिष्क में अनेक प्रश्न उभरने लगे।

आज इस रहस्य के खुलासा करने का उचित अवसर था। मैंने साहस कर उससे पूछ ही लिया, 'पद्मा! बुरा न मानो एक बात जानना चाहता हूँ। तुमने विवाह न करने का निर्णय क्यों लिया ? तुम एक खुशमिजाज, रूप–गुण संपन्न लड़की हो, आखिर तुमने ऐसा कठोर निर्णय क्यों लिया ? सुना है इसी कारण तुम्हारे पिता को दो बार हृदयाघात हुआ है ? क्या तुम्हें उनके दुःख की किंचित् परवाह नहीं ?'

मैंने उससे प्रश्न तो पूछ लिया लेकिन सामने दृश्य देखकर मेरा हृदय कांप गया। उसकी आंखों में अश्रुओं की बाढ़ लग गई एवं देखते ही देखते चेहरा आंसुओं में नहा गया। उसकी दशा ऐसी थी जैसे वर्षों से बंद पड़े बांध के सभी फाटक एक साथ खोल दिए हो।

हम दोनों कई देर तक चुप बैठे रहे। एक नीरव सन्नाटा हम दोनों के भीतर उतर चुका था। दोनों एक दूसरे की श्वासों की आवाज तक सुन सकते थे। वह संयत हुई तो पर्स से रूमाल निकालकर उसने आंसू पोंछे। मुझे लगा वह थोड़ी देर में नार्मल हो जाएगी। आश्चर्य! अब उसका चेहरा क्रोध से लाल होने लगा था। इस बार मेरी ओर तीखी आंखों से देखकर वह बोली, 'तुम ठीक कहते हो रितेश! मुझे अपने पिता के दुःख, पीड़ा एवं संत्रास की कोई परवाह नहीं है। सच्चाई तो इससे भी अधिक कठोर है। उन्हें दुखी एवं पीड़ित होते देख मुझे सुकून मिलता है।'

'तुम क्या कह रही हो पद्मा! होश में तो हो ?' मेरी उत्कंठा मानो वेदना के अजस्र स्रोतों में फूट पड़ी।

'मैं बिल्कुल ठीक कह रही हूं रितेश! शायद तुम नहीं जानते, मेरे पिता ने यौवन में मेरी मां को कितना प्रताड़ित किया है। तब मैं बहुत छोटी थी। बचपन की एक–एक घटना मेरे स्मृति पटल पर अंकित हैं। मेरे पिता मां से बलात् हर बात मनवाते। विरोध करने पर वे उसे कठोर दण्ड देते। पिता की जायज–नाजायज हर इच्छा मां के लिए आदेश होती। उनके घर में आते ही वह सभीत हिरणी की तरह सहम जाती। अनेक बार मैंने मेरे पिता को जूतों–लातों तक से उसे पीटते हुए देखा है। एक बार तो मेरे पिता मां पर इतने क्रोधित हुए कि उन्होंने मां पर हंटर बरसाकर उसे लहुलूहान कर दिया। उस दिन मैं घण्टों दांत भींचे खड़ी रही। काश! मेरे हाथों में भी एक हंटर होता। मां मजबूरी में उनकी हर बात मानती एवं उनके घर से बाहर जाने के पश्चात् तकिए में मुंह रखकर घण्टों रोती। मेरे बाल–मन पर उसकी सिसकियां आज भी अंकित है। मैं तब प्रतिकार नहीं कर पाई पर पिता से विरोध के अंकुर मेरे मनःपटल पर बचपन से पैठ गए। मैं ज्यों–ज्यों बड़ी हुई पिता की तानाशाही दिन–दिन बढ़ती गई। इसी दरम्यान मां अनेक बार गंभीर अवसाद का शिकार हुई। मेरे पिता ने मां की बीमारी की किंचित् परवाह नहीं की। उनके जुल्म सहते–सहते मां बुत बन गई। रितेश! मेरे लिए विवाह का अर्थ दाहक नरक के अतिरिक्त कुछ नहीं है। मेरा वैवाहिक उन्माद कब का समाप्त हुआ। सूखी नदी की तरह मेरे भीतर के सारे जल–स्रोत सूख गए हैं। मेरी इच्छाएं इस नदी की सतह पर बिखरी बालू मिट्टी की तरह कब की मृत हुई। सच पूछो तो मुझमें विवाह करने का साहस भी नहीं है। मेरा चिर कुंवारापन मेरे पिता को उनकी चिर प्रताड़नाओं का उत्तर है। मैं जब तक जीवित हूं मेरे पिता से मौन प्रश्न करती रहूंगी – वर्षों मां को दुःखी किया, प्रताड़ित किया, अब अपनी इकलौती बेटी को दुःखी एवं पीड़ित होते हुए देखो। तुम्हारे हंटर मां पर नहीं मेरी स्मृतियों की पीठ पर पड़े हैं। तुमने मां की बीमारी की परवाह नहीं की, अब मैं तुम्हारी बीमारी की परवाह क्यों करूं ? तुम्हारी तड़प मुझे आनंद देती है। यही मेरा प्रत्युत्तर है एवं प्रतिशोध भी। हिम्मत हो तो मुझ पर तानाशाही करके दिखाओ।' कहते–कहते पद्मा की आंखों से चिंगारियां बरसने लगी थी।

कौन जानता है मनुष्य के अवचेतन मन की कंदराओं में क्या–क्या छुपा है ? इन अंधेरी गुफाओं के भीतर झांककर किसने देखा है ?

हम होटल से बाहर निकले तब क्षितिज के उस पार सूरज डूब रहा था।

**सी–136, 'आँचल', कमला नेहरू नगर, प्रथम विस्तार,**
**जोधपुर (राज.), 94141–32483**

कहानी

# प्रतीक्षा

पद्मा मिश्रा

**दोपहर** के दो बज रहे थे, सीमा ने उचटती सी नजर घड़ी पर डाली, अभी चार बजे उसे कोर्ट जाना है। एक महत्वपूर्ण केस पर बहस के लिए और अभी तो उसे तैयार भी होना है....वह न जाने कब तक सोती रही थी। आँखों में आंसू भी सूख चुके थे. दर्द की परछाइयां शायद नींद के आगोश में जाकर मन की गहराईयों में कहीं विलीन हो चुकी थीं। वह धीरे से उठी.. बाथरूम में जाकर ठन्डे पानी से हाथ, पाँव, चेहरा धोया और धो पोंछ कर बहा दिया उदासी, दर्द की शेष रही लकीरों को. ..पानी की बूंदों में घुल गए मन के आंसू। मेकअप की हलकी परतों में चेहरे और आँखों की सूजन को छिपाकर सादी साड़ी में सुसज्जित मिसेज सीमा भारद्वाज, एक कुशल अधिवक्ता, नगर की प्रसिद्द लेखिका, समाजसेविका चल पड़ी अपने मंजिल की सीढियां तय करने। ...जिन्दगी का यह रूप उसका निजी था। ..एक भोगा हुआ यथार्थ.. उसकी कविताओं की तरह काल्पनिक नहीं। सच्चाई के धरातल पर खडी आज सीमा भारद्वाज लड़ रही थी....., जिन्दगी के अनेक मोर्चों पर।. ......एक साथ, पति, बच्चे, गृहस्थी, उनसे जुड़ी परेशानियाँ, सामाजिक जिम्मेदारियां, ..सभी कुछ..!

आज सुबह से ही वातावरण तनावग्रस्त था। पति सौरभ नाराज थे और तनाव की लकीरें उनके चेहरें पर साफ साफ नजर आ रही थीं। कारण भी स्पष्ट नहीं था...अलमारी की सफाई न होने, या कप टूटने जैसी छोटी छोटी बातों पर भी उनका गुस्सा भड़क सकता था, ..यह तो वह जानती थी, पर इस हद तक?..वह अनुमान नहीं लगा सकी थी। बेटियां अपना होमवर्क कर रही थीं, और वह किचन में व्यस्त थी. ..अचानक आई विपत्ति की तरह उनका चीखना चिल्लाना सुन वह बदहवास हो दौड़ी थी, आलमारी में बिखरी किताबें उसका मुंह चिढ़ा रही थीं। और सौरभ जोर जोर से बस डांटे जा रहे थे। वह उन्हें समझाने का प्रयत्न करने लगी, अपनी सफाई में अभी कुछ कहने को मुंह खोला ही था कि लहराती हुई एक किताब उसके पांवों से टकराई, ..और फिर एक जोरदार थप्पड़।

बातों के शूल अपमान की हदें पार कर चुके थे, वह बस चुपचाप रोती रही, और रोते रोते ही बिस्तर पर गिरकर सो गयी। किसी ने उसे जगाया भी नहीं. ... बेटियां स्कूल जा चुकी थीं...सौरभ अपने कमरे में बैठ कर कोई किताब पढ़ रहे थे। उठी तो सब कुछ शांत था, ...एक तूफान के गुजर जाने के बाद की शांति। उसने राहत की सांस ली.उसे अपने अपमान और दर्द की बात याद नहीं आई, बल्कि– घर में शांति है, यह बात उसे सुकून देने वाली लगी। शायद हर आम परिवार में घुटती.. जूझती हर नारी ऐसा ही सोचती है...वह इस अन्याय के खिलाफ आवाज भी नहीं उठा सकती या यों कहें कि आवाज उठाना भी नहीं चाहती, .......नारी विमर्श और नारी उत्पीडन के के लिए लिखने वाली ..उनके हक के लिए सामाजिक संस्थाओं के साथ आवाज मिलाती सीमा भारद्वाज अपने घर के दायरों में कैद ...कितनी विवश.. कितनी निरुपाय थी, ..यह बात सीमा के अतिरिक्त कौन समझ सकता था?..पर वह कायर नहीं थी। वह एक हद तक खुद को स्वार्थी ही मानती थी। घर की शांति के लिए, बच्चों के भविष्य के लिए, खुद सौरभ के स्वास्थ्य के लिए, और दूसरों के सामने खुद को, परिवार को लज्जित होने से बचाने के लिए। वह चुपचाप वर्षों से यह सब सहती आ रही थी।

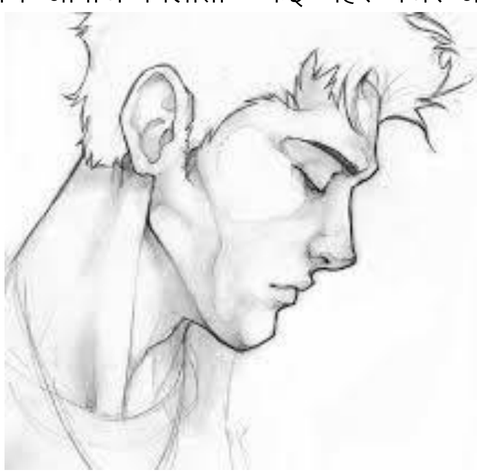

सौरभ के पिता नहीं थे, माँ बचपन में ही चल बसी थी। सौतेली माँ ने पाला था, पर उस पालन पोषण की कीमत उसके पिता की सम्पत्ति पर अपने सम्पूर्ण अधिकार के रूप में पाना चाहती थीं। और यह उन्होंने कर दिखाया धोखे से कागजों पर सौरभ के हस्ताक्षर लेकर। पर पिता की छोड़ी जमीन का एक बड़ा हिस्सा सौरभ के बेटे के नाम था, जो उनकी आँखों में खटकता रहता था। वह जब तब सौरभ को फोन कर, उससे बहस करके, अपशब्दों से, उसको अपमानित करती रहती थी। बस वे तनावग्रस्त हो अपना गुस्सा कभी उस पर, कभी बच्चों पर निकाला करते थे।

इस आपाधापी में उसे बेहद प्यार करने वाला उसका अपना सौरभ कहीं खो गया था। प्रेम की बेल ही सूख गयी हो जैसे..। वह जितना समझाती, वह उतना ही भड़क उठते। फलस्वरूप उसने अपना सब कुछ समय पर छोड़ दिया था। वह जान रही थी कि आज भी कुछ ऐसा ही हुआ होगा। उसने गहरी सांस ली। कार ड्राइव करते हुए सीमा अपनी सोच में इतनी डूब गयी थी कि सामने से आते एक ट्रक से टक्कर होते होते बची। वह काँप उठी..अगर मर जाती तो? ....अच्छा ही होता,...... सब खटरागों से मुक्ति मिल जाती। अपनी इस क्षणिक कायरता पर मन ही मन मुस्करा उठी सीमा। मौत भी उसके भाग्य की तरह उससे कतरा कर निकल गयी. ....कोर्ट आ गया था, जाने –अनजाने कई चेहरे नजर आ रहे थे। बाहर खड़ी गाड़ियों की कतार में गाड़ी पार्क कर वह कक्ष में जैसे ही घुसी, उसके मित्र सामने ही मिल गए थे। सीनियर से बातें करती हुई वह कोर्ट के अन्दर चली गई थी। आज बहस के दौरान सीमा नारी प्रतारणा के विरोध में जम कर बोली थी, शायद उसकी अपनी पीड़ा, बेबसी एक माध्यम पाकर मुखरित हो उठी थी। सभी आज एक नई सीमा भारद्वाज को देख रहे थे। कोर्ट से लौटी तो तन मन थक कर चूर थे। एक कप चाय पीकर वह पलंग पर लेती ही थी कि कोमल जी का फोन आ गया– ''मिलन संघ में एक कवि गोष्ठी है, आ जाइए, कब से फोन लगा रहा हूँ....।''

''मैं सोचूंगी कोमल भाई, अभी तो बहुत थकी हुई हूँ।'' उसने आँखे बन्द कर लीं। बच्चे स्कूल से आ गए थे। सीमा का मन आज बहुत ही आकुल व्याकुल था। मन की बोझिलता को कम करने के लिए उसने कवि गोष्ठी में शामिल होने का मन बना लिया। बच्चों और सौरभ के लिए सब्जी बना कर और आटा भी गुंध कर फ्रिज में रख दिया, शाम को लौट कर रोटियां बना लेगी। थोड़ी देर बाद कवि गोष्ठी के लिए तैयार होकर सौरभ को चाय दे, शाम को लौटने की बात बता कर बाहर

आते समय उसने सुना– ''देर होने पर फोन कर देना।'' सौरभ कह रहे थे। यह सुलह की औपचरिकता थी। बच्चों को खाना खा लेने की हिदायत दे वह बाहर आ गयी। कवि गोष्ठी में मंच संचालन करते समय ..पढी जाती कविताओं पर दाद देती, हर भावपूर्ण पंक्ति पर अपनी टिप्पणी देती, .. श्रोताओं की तालियों में गुम होती ...अपने मन के हाहाकार को सीमा साफ–साफ सुन पा रही थी। तभी कोमल जी ने उसका नाम पुकारा– ''अब मै आमंत्रित करता हूँ... अपने नगर की शान, स्वयं सरस्वती स्वरूपा सीमा भारद्वाज को!'' .वह शांत मन से डायरी के पृष्ठ पलटने लगी। सोचा तो था कि प्रकृति प्रेम या पर्यावरण पर कोई सुनाएगी, पर भींगी आँखों ने यह कौन सी कविता ढूंढ़ निकली थी?... कविता के शब्द गूंज रहे थे–

''जिन्दगी और सच्चाई के बीच
एक लम्बा फासला तय करती है
औरत की जिन्दगी
रोटियां बनाते.. आँगन बुहारतेकृ
क्या एक पल के लिए भी
किसी ने सोचा?
कब टूटीं उसके सपनों की साँसें?
कब गिरे संवेदनाओं के ताजमहल?''

कविता के शब्द आँखों से आंसू बन पिघल रहे थे। ''सीमा जी, आप ठीक तो हैं न?'' अनीता सिंह ने उसकी और पानी का गिलास बढाया था।

''हाँ, मैं ठीक हूँ!''... पानी पीकर वह कुछ स्वस्थ हो गयी थी। जिन्दगी कुछ और आगे बढ़ गयी थी। सौरभ अब और भी अधिक क्रोधी हो गए थे। और जिम्मेदारियों से दूर भागने लगे थे। बेटे की शिक्षा, बेटियों को पढ़ाना और उनके विवाह आदि सारे कार्य सीमा ने अकेले ही किये थे। पर वर्षों बाद इन डूबती उतराती साँसों के बीच ...मन में पल रही एक अंतहीन प्रतीक्षा थी कि ...आज न सही कल.. कभी उसका साथी लौट आएगा उसके पास .. .उसे भी तो मेरे साथ की जरुरत होगी। .जीवन की अनंत यात्रा पर वह अकेली नहीं होगी, उसे ले जाने वाले चार हाथों में उसका चिर साथी भी शामिल होगा। ...अपने प्यार की पालकी उठाये..............बस प्रतीक्षा ही तो थी ..एक अंतहीन प्रतीक्षा!

✉ **padmasahyog@gmail.com**

<u>लघुकथा</u>

## आस्था

**सविता मिश्रा**

'गाँव के बाहर जो कुँआ है, उस पर इतनी भीड़ कैसी?' पहला नवयुवक बोला।

'सब प्यासे मर रहें थे पर उस कुँए के पास भी न जाते थे। परन्तु आज देखो, भीड़ टूट पड़ी है।' दूसरा युवक बोला।

'हाँ, कहते थे कि उसका पानी जहरीला है! फिर आज न जाने क्या हुआ?' पहले ने आश्चर्य से सवाल किया। 'इन लोगों की दिक्कत देख दया आ गयी।' दूसरा बोला

'दया! किया क्या तुमने जो इन लोगों का हृदय परिवर्तन हुआ! मैं तो समझा-समझाकर हार गया।' पहले ने सवाल किया।

'कुछ नहीं, कह दिया कि नवरात्रे में रोज सपना आ रहा था। सपने में माँ दुर्गा आई थीं। उन्होंने कहा कि वीराने में जो कुँआ है उस में मैंने अमृत घोल दिया है। जो भी उसका पानी पियेगा या उस पानी से नहायेगा उसका रोग क्षणमात्र में गायब हो जायेगा।' दूसरा विश्वास से बोला।

'सबने तुम्हारे कहने मात्र से विश्वास कर लिया!' पहला विस्मित सा हुआ।

'हाँ, क्यों न करेंगे ? भोलेभाले लोग है, आस्था ही तो इन सब की कमजोरी हैं। मैंने उनकी इस कमजोरी का लाभ उठाया।' दूसरे ने कहा।

'फिर!' आश्चर्य से मुँह खुला रह गया पहले का। 'फिर क्या! सबके दिमाग में ये बात घर कर गई। जैसे ही ये खबर आग की तरह फैली, लोग कंसेडी, गगरा, बाल्टी ले पहुँच गए।' दूसरे ने कहा।

'अब देख ही रहे हो! लोगों की प्यास भी बुझ रही और कुँए के पानी का भी सही इस्तेमाल हो रहा।' उस कुँए की ओर जाती भीड़ को दिखाते हुए दूसरे ने कहा।संतोष जताते हुए फिर बोला, 'सुन रहा हूँ सब चंदा कर उस कुँए की मरम्मत भी करवायेंगे।'

'चलो अच्छा है उस कुँए के भी दिन बहुरे!' पहला संतोष जताते हुए बोला। पानी के लिए भीड़ धक्कामुक्की कर रही थी कुँए की जगत पे, पर दोनों नवयुवक यह देख बहुत खुश थे।

**– फ्लैट नंबर-३०२, हिल हाउस, खंदारी अपार्टमेंट, खंदारी, आगरा २८०००२**

कहानी

# क्यों.... सिया ही क्यों ?

सीमा 'असीम' सक्सेना

**सिया** ने घडी की तरफ नजर दौड़ाई, देखा.. रात के एक बज रहे हैं। पर नींद उसकी आँखों से कोसों दूर है। घर के सबलोग सो चुके हैं जरा सी देर को पापा के खर्राटों से उसका ध्यान भंग हो जाता है। इसके बाद फिर वह अपनी दुनियां में मगन हो जाती है। जहाँ हर्ष और उसके सिवाय कोई और नहीं है। अचानक से उसका बहुत तेज जी घबराया। उसने कमरे की बंद खिड़की को खोल दिया एक सर्द हवा का झोंका उसके बालों को सहलाते हुए पूरे बदन को ठंड से कंपकपा गया। लेकिन जी का घबराना न रुका तो वह वाश रूम में चली गयी, वहां पर उसने ढेर सारी उलटी कर दी।

आँखों से पानी बह निकला इस भयंकर सरदी में भी उसका शरीर पसीने से भीग गया। ये क्या हो गया? ऐसा तो उसने कुछ भी नहीं खाया था। मन ही नहीं हुआ था खाने का। कई दिनों से उसकी तबियत गडबड चल रही थी और उससे कुछ खाया ही नहीं जा रहा था। पर उसे खुद का होश ही कब है जो यह सब महसूस करती और डा. से कंसल्ट करती। जब उलटी आई तो होश आया उसने अपनी उंगलियों पर हिसाब लगाया। अरे, दो महीने हो गए उसका पीरियड्स अभी तक नहीं हुआ था। तो क्या वह ?? ओह नों! ऐसा नहीं हो सकता। वह घर वालों को क्या जवाब देगी या हर्ष को क्या बताएगी ? क्या वे उस पर विश्वास करेंगे ? क्या उसे भी सीता की तरह अग्निपरीक्षा से गुजरना पड़ेगा ? लेकिन अग्निपरीक्षा तो हर्ष के आने पर देनी होगी। अभी घर में, समाज में, इन सबका सामना कैसे करेगी ? आत्ममंथन चलने लगा। सोचा अभी हर्ष को फोन करके सब बता दे, फिर मन में आया चलो अब सुबह ही बात करेगी। अभी कुछ देर पहले ही बात हुई थी। हर्ष ने गुड नाईट विश करते हुए कहा था कि आज बहुत थक गया हूँ अब सोने जा रहा हूँ। ऐसे में उसे जगा कर कुछ भी कहना सही नहीं लगा। करवटें बदलते हुए सारी रात गुजर गयी। रजाई में मुँह ढँककर भी शरीर में गर्माहट का नामोंनिशान नहीं था। जब सुबह को थोड़ी सी खुली हुई खिड़की की झिरी से सूरज की किरणों ने उसके माथे को चूमा तो वह हलके से मुस्कुरा कर उठ गयी। रात में कब सो गयी थी, उसे पता ही नहीं चला। घड़ी में समय देखा सुबह के 10:30 हो रहा था। तो क्या आज माँ ने उसे चाय के लिए भी नहीं बुलाया ? वह कमरे से निकल कर बाहर आ गयी। देखा... पापा ऑफिस जाने को तैयार खड़े हैं और माँ किचिन में परांठे सेंक रही हैं।

—क्यों सिया बेटा, उठ गयी तुम ? माँ के स्वर में व्यंग्य साफ नजर आ रहा था।

—माँ, क्या आज ज्योति काम पर नहीं आई? सिया ने माँ की बात को अनसुना करते हुए उनसे ही सवाल दाग दिया।

—क्या तुम्हें नहीं पता कि वो आजकल छुट्टी पर चल रही है ? वैसे तुम्हें पता भी कैसे होगा ? खुद का तो होश नहीं है। घर पर ध्यान कब रहेगा तुम्हारा!

सिया ने कोई जवाब नहीं दिया। सच ही तो कह रही हैं माँ....उसे कहाँ होश रहा है इन दिनों ? खुद को बिलकुल भूल ही चुकी है। उसने डाइनिंग टेबल पर रखी चाय की केतली में से एक कप में चाय लौटी और कप को दोनों हाथों से पकड़ कर अपने कमरे में आ गई। माँ से बहस करने से अच्छा है अपने कमरे में चुपचाप आकर बैठ जाया जाये। वैसे गलती जब खुद की हो तो चुप रहना ही बेहतर रहता है। चाय पीते हुए वह हर्ष के बारे में ही सोच रही थी क्योंकि हम जिससे मन के बंधन में बंधे होते हैं... उससे दूर रहकर भी प्रतिपल उसी से बात करते हैं। जुबाँ के खामोश होते भी हमारी रूहें आपस में बातें करती रहती हैं। एक को तकलीफ होने पर दूसरे को पता चल ही जाता है। तभी उसके मो. फोन की घंटी बज उठी। देखा तो हर्ष का फोन था।

—अरे हर्ष.... कैसे हो तुम ? अभी तुम्हारे बारे में ही सोच रही थी। उसने जल्दी से फोन उठाते हुए कहा।

—मैं बिलकुल ठीक हूँ यार! तुम बताओ, कैसी हो ? और मेरे बारे में क्या सोच रही थी ?

—मैं भी बहुत बढ़िया हूँ। बस यही सोच रही थी कि इस समय तुम मेरे पास होते।

—फिर वही बात। पता है न, मैं पांच महीने के बाद आ रहा हूँ। अच्छा अभी फोन रखता हूँ... शाम को बात करूँगा।

—हर्ष सुनों..... प्लीज, मुझे तुमसे बहुत जरुरी बात करनी है। मैं रात भर सो भी न सकी थी।

—ऐसी क्या बात हो गयी... जो रात भर नही सोईं ? मुझे ऑफिस जाने की जल्दी है फिर भी तुम बताओ। चलो हो जाने दो देर, आज देर ही सही।

—हर्ष तुम्हें याद हैं न .... कॉलेज टूर के वो चार दिन।

—तो ये जरुरी बात है। वैसे वो दिन कब, कहाँ, कभी भूलाये जा सकते हैं।

—अरे नहीं, ये बात नहीं। मेरी पूरी बात तो सुनों!

—सुनाओ, लेकिन जरा जल्दी कर लो यार!

—वे सिर्फ चार दिन मात्र नहीं थे बल्कि ये वो दिन थे, जिन दिनों की वजह से हम दोनों हमेशा हमेशा के लिए एक सूत्र में बंध गए थे।

—हूमम्म! अच्छा तो ये है जरुरी बात। मुझे पता है हम सिर्फ एक दूसरे के लिए ही बने हैं।

—नहीं भई, आई हैव कंसीव!

—ओह नों! यह कैसे हुआ ? अब क्या होगा?

—बस यही सोचकर मैं परेशान हूँ कि अब क्या होगा ?

—चलो परेशान होना छोड़ो। परेशान होने से क्या होगा। अभी मेरा आना तो पांच महीने बाद ही हो पायेगा.... तुम्हें ही कुछ करना पड़ेगा।

—क्या करूँ मैं ?

—अबोर्शन।

— हर्ष वो इतना आसान नहीं है।

सिया बस यही एक तरीका है क्यूंकि अभी हमारी शादी नहीं हो सकती। पहले दीदी की होगी फिर मेरी। ओके, चलो अब शाम को बात करते हैं।

हर्ष ने फोन रख दिया। हर्ष ने कितनी सहजता से कह दिया था। सिया असमंजस की स्थिति में आ गयी थी। अब वह क्या करेगी। माँ को बताना इतना सरल नहीं है। वे वैसे ही आजकल उससे परेशान हैं। सबकुछ बहुत मुश्किल है। पहाड़ सी परेशानी सर पर आ गयी। एक तो वह विरह और इंतजार के गम में घुल रही थी ऊपर से ये समस्या। इसका तो जल्दी से जल्दी कोई न कोई उपाय करना होगा। उसे समझ आ रहा था कि

गलती तो उसकी ही है...... मर्द के अंदर तो एक जानवर रहता है। उसे ही इतना आगे नहीं बढ़ना चाहिए था, लेकिन उसने प्रेम के कारण ही समर्पण किया था। क्या पता था उसका इतना बड़ा खामियाजा भुगतना पड़ेगा। सारे दर्द उसके हिस्से में आ जायेंगे। अब उसे दूर दूर तक हर्ष का साया भी नजर नहीं आ रहा था। उस सुख के तो वे दोनों ही साझीदार थे फिर दुःख सिर्फ अकेले उसे ही क्यों ? हर्ष के इंतजार में परेशान वह एक और परेशानी में घिर गयी थी। हमेशा से ही ऐसा होता आया है... सारा दर्द अकेले औरत के हिस्से में ही आता है। इतना दर्द झेलने और सहने के बाद भी वह सबको खुशी और प्रेम ही बांटती है और सब कष्ट अपनी झोली में डाल लेती है। उसका नर्म दिल और मासूम मन कभी भी किसी से नफरत कर ही नहीं सकता। तभी तो प्रेम, दया, करुणा और वात्सल्य की मूरत होती है एक औरत। अब उसे निर्णय लेना ही था, एक कठोर निर्णय। उसे खुद को और अपने प्रेम को समाज के आगे नीचा नहीं दिखाना था, फिर परिवार की मर्यादा.... वो भी तो उसके ही हिस्से में आई है। अपने मम्मी–पापा को किसी भी हाल में समाज के आगे बदनाम नहीं होने देगी। क्या वह खुद को खत्म कर ले ? नहीं, इससे तो समस्या का निदान नहीं, बल्कि और ज्यादा बातें बनेगी। हाँ, यह अलग बात है कि यह सब देखने सुनने के लिए वह नहीं होगी। उसे अपनी प्रेगनेंसी से निजात पानी होगी।

आज सिया का सचमुच बहुत मन खराब हो रहा था। कालेज में भी पूरे दिन मन नहीं लगा। उसने घर आकर फौरन टी वी ऑन कर लिया शायद मन थोडा अच्छा हो जाये। देखा टीवी पर रामायण सीरियल आ रहा है। सीता जी अशोक वाटिका में बैठी हैं। 'हरे राम! हरे राम!' की प्रतिध्वनि से पूरा वातावरण गुंजायमान हो रहा है। बीच बीच में उन खर्राटों की आवाजें भी आ जाती हैं जो पहरे पर बैठी राक्षसी के सोने से उत्पन्न हो रहे हैं। वही पर फलों का भरा हुआ एक टोकरा भी रखा हुआ है, लेकिन सीता जी ने उसमें हाथ भी नहीं लगाया, वे सुबह से निराहार हैं। अन्न का त्याग तो उन्होंने उसी दिन कर दिया था जिस दिन रावण साधू का वेश बनाकर उन्हें पंचवटी से उठाकर ले आया था। अभी तक वे राम का इंतजार करते हुए फलाहारी व्रत कर रही थी, परन्तु आज से लगता है, उन्होंने फलों का भी त्याग कर दिया है और शायद ये प्रण ले लिया है कि जब तक राम न आ जाएँ .... वे निराहार ही रहेंगी। हे भगवान, इतना कठोर तप राम को पाने के लिए। कैसे सहन किया होगा उन्होंने? कैसे रही होंगी... वे राक्षसों के बीच में ? और फिर बार बार रावण का आकर भरमाना। महान तपस्वी सोने की लंका का स्वामी प्रचंड ब्राह्मण रावण भी सीता जी को राम के मोह से विलग नही कर पाया था। वे साध्वी बनी इतने बरस तक दिन–रात राम का नाम जपती हुई अशोक वाटिका में ही बैठी रही। केवल इस विश्वास के सहारे कि राम एक दिन अवश्य आयेंगे। लेकिन कब ? यह वो नहीं जानती थी। फिर भी वे प्रतीक्षारत थीं। क्या मैं इतना त्याग कर पाऊँगी? शायद नहीं और सीता जी के जैसा तो नाममात्र भी नहीं। जबकि सिया तो जानती है बल्कि उसे पक्का पता है कि नियत दिन और तारीख को हर्ष लौट आयेंगे। आ जायेंगे वे वापस और बना लेंगे उसे हमेशा हमेशा के लिए अपना। हो जायेगा उसका इंतजार खत्म। फिर भी इस समय जो विरह वेदना लगता है जैसे कि सिया झेल रही है वह बहुत दुष्कर है। सच में, पूरी रात जागकर निकल जाती है और अगर झपकी लग भी जाये, तो हडबडा कर आँख खुल जाती है ..... हर्ष उसका हाथ पकड़ कर उसे जगा रहे हों। एक टीस भरी दर्द की लहर उसके सीने में उठती है। उफ, कितना कष्टप्रद है यह। लगता है जैसे शरीर से किसी अंग को काटकर दूर फेंक दिया है या बहुत दूर उछाल दिया है और वह उससे रिसते खून को रोक नहीं पा रही। जब जाते समय हर्ष ने कहा था कि मात्र छः महीने की ही तो बात है और यह इंटर्नशिप करनी भी जरूरी है। हर्ष की यह

इंटर्नशिप ....लगता है उसकी जान लेकर ही छोड़ेगी। हर्ष उससे करीब तीन हजार किलोमीटर दूर हैं। वे बीच में मिलने भी नहीं आ सकते। हालाँकि फोन पर रोजाना ही बात हो जाती है, परन्तु फोन पर बात करते हुए उससे मिलने की हुड़क कुछ और तेज हो जाती है। सिया व्याकुल हो उठती है। हर्ष तुम मेरे पास में होते, मैं तुम्हें हिलक कर अपने गले से लगा लेती .... और अपने सारे दुःख, दर्द भूल जाती... वह ऐसा सोंचती। लेकिन सोंचने से कभी कुछ कहाँ हुआ है। उसे ध्यान आता है कि सीता जी तो नवविवाहिता थी और वे अपना मधुमास मना रही थी। बीच में रावण आ गया और उन्हें राम से अलग कर दिया। सिया और हर्ष के बीच में आ गयी रावण–रूपी नियति, समाज, दुनियादारी, पैसा और ये इंटर्नशिप सब टांग अडाकर खड़े हो गये। चले गये हर्ष उससे दूर। वो क्या गये उसका सुख चौन के साथ मन भी संग ले गये।

–किस दुनिया में रहती हो ? क्या तुम्हें कतई होश नहीं ? माँ अक्सर डांटते हुए कहती। सच ही तो कहती हैं माँ। कहाँ रहा उसे होश या फिर कुछ और याद ? उसे समझ नहीं आता आखिर वह क्यों जी जान से हर्ष को चाहती है ? ऐसा उसमें क्या है ? जो किसी और में नहीं। देखा जाये तो वह उसके प्यार में पागल हो गयी है। उसे अपने अंतर्मन में बसा लिया है अब उसके जैसा तो कोई भी नहीं। उसे याद आता है, उसने कहीं पढ़ा था कि अगर कोई औरत किसी को चाहती है तो टूटकर या नफरत करती है तो वह भी टूटकर। प्यार में जीवन संवार देती है और नफरत में बर्बाद कर देती है। वह सच्चा प्यार करती है अपने हर्ष से। किसी नेमत की तरह प्रेम उनके जीवन में उतर आया है। वह तो इस समय सर से लेकर पाँव तक हर्ष के प्यार में डूबी हुई है, तभी तो उसकी हर बात अच्छी लगती है। वे जो कुछ कहना चाहते हैं या कहते हैं फौरन मान लेती है। यह दिल ऐसा ही होता है। जब उसका जी चाहता है या किसी पर फिदा होता है तो वो किसी बड़ी से बड़ी बात का बुरा नहीं मानता और कभी जरा सी बात पर ही नाराज हो जाता है। यह दिल भी बड़ा बेदिल होता है। नियम से हर्ष फोन पर बात करते हैं फिर भी मन में घबराहट या बेचैनी सी क्यों बनी रहती है ? लेकिन इस क्यों का जवाब सिया के पास बिल्कुल भी नहीं है।

–आजकल सब बहुत आसान है। हर्ष ने कहा था। हर्ष की यह बात उसके दिमाग में पूरे दिन मंथन करती रही। क्या सच में सबकुछ बहुत आसान है ? कहने और झेलने में कितना अंतर है। लेकिन तब भी वह सहेली गीतिका के साथ नर्सिंग होम पहुँची थी। डॉ.ने पूछा था– 'पति कहाँ हैं ?' गीतिका ने आगे आकर बात को सँभालते हुए कहा था कि वो बाहर हैं और इसको अभी अपनी पढाई पूरी करनी है। अगर अभी से बच्चे के चक्कर में आ गयी तो इसका पूरा करियर चौपट हो जायेगा। प्लीज, अभी इसे निजात दिला दीजिये। कितना मुश्किल था लेकिन गीतिका ने किसी तरह डॉ. को मना लिया था। बिना किसी हिचक के ही उसने सारी जिम्मेदारी ले ली थी और खुद ही आगे बढ़कर साइन भी कर दिए थे। आज अगर गीतिका उसका साथ न देती तो ? सिया ने अपने कानों के इअरिंग्स और फिंगर रिंग निकल कर गीतिका को पकड़ा दी थी। अब वह ओ.टी. की चाहरदीवारी के भीतर अकेली थी, जहाँ बड़ी बड़ी मशीनें और ओपरेशन के सामान उसके डर को बढ़ा रहे थे। उसने कसकर आँखे बंद कर ली। हर्ष, कहाँ हो तुम आ जाओ न। भले ही ये दर्द अकेले मुझे ही सहना है, पर तुम्हारे होने भर से ही मैं सारे दर्द को भूल जाऊंगी। ये मेरे दिल की आवाज है हर्ष कि तुम्हारे लिए मेरा प्यार हर दर्द के बाद और मजबूत हो जाता है। अब डॉ. की आवाज उसके कानों में सुनाई आ रही थी। वो कह रही थी, जल्दी एनस्थीसिया लगाओ। उसने डर से अपनी आँखें अभी भी नहीं खोली थी। उसे कोहनी के पीछे के हिस्से में इंजेक्शन की दर्द भरी चुभन हुई थी। एक तेज चीख उसके मुँह से निकली और दिमाग कहीं अवचेतन में चला गया था। क्या वह चीख उसके हर्ष तक पहुँची होगी ? प्रेम करने की ये कैसी सजा मिली है ? और इंतजार, परीक्षा व त्याग हर बार औरत को ही करना पड़ेगा। यही एक औरत की नियति है। चाहें सिया हो या सीता!

✉
**208डी, कॉलेज रोड, निकट रोडवेज, बरेली– 243001**
9458606469

**अमेरिकी कहानी**

# दूसरे देश में

**(अर्नेस्ट हेमिंग्वे की कहानी 'इन अनदर कंट्री' का अंग्रेजी से हिंदी में 'दूसरे देश में' शीर्षक से अनुवाद)**

मूल लेखक : अर्नेस्ट हेमिंग्वे
**अनुवाद : सुशांत सुप्रिय**

**शरत** ऋतु में भी वहाँ युद्ध चल रहा था, पर हम वहाँ फिर नहीं गए। शरत् ऋतु में मिलान बेहद ठण्डा था और अँधेरा बहुत जल्दी घिर आया था। फिर बिजली के बल्ब जल गए और सड़कों के किनारे की खिड़कियों में देखना सुखद था। बहुत सारा शिकार खिड़कियों के बाहर लटका था और लोमड़ियों की खाल बर्फ के चूरे से भर गई थी और हवा उनकी पूँछों को हिला रही थी। अकड़े हुए, भारी और खाली हिरण लटके हुए थे और छोटी चिड़ियाँ हवा में उड़ रही थीं और हवा उनके पंखों को उलट रही थी। वह बेहद ठण्डी शरत् ऋतु थी और हवा पहाड़ों से उतर कर नीचे आ रही थी।

हम सभी हर दोपहर अस्पताल में होते थे और गोधूलि के समय शहर के बीच से अस्पताल तक पैदल जाने के कई रास्ते थे। उनमें से दो रास्ते नहर के बगल से हो कर जाते थे, पर वे लम्बे थे। हालाँकि अस्पताल में घुसने के लिए आप हमेशा नहर के ऊपर बने एक पुल को पार करते थे। तीन पुलों में से एक को चुनना होता था। उनमें से एक पर एक औरत भुने हुए चेस्टनट बेचती थी। उसके कोयले की आग के सामने खड़ा होना गरमी देता था और बाद में आपकी जेब में चेस्टनट गरम रहते थे। अस्पताल बहुत पुराना और बहुत ही सुंदर था और आप एक फाटक से घुसते और और चल कर एक आँगन पार करते और दूसरे फाटक से दूसरी ओर बाहर निकल जाते। प्रायः आँगन से शव–यात्राएँ शुरू हो रही होती थीं। पुराने अस्पताल के पार ईंट के बने नए मंडप थे और वहाँ हम हर दोपहर मिलते थे। हम सभी बेहद शिष्ट थे और जो भी मामला होता उसमें दिलचस्पी लेते थे और उन मशीनों में भी बैठते थे जिन्होंने इतना ज्यादा अंतर ला देना था।

डॉक्टर उस मशीन के पास आया जहाँ मैं बैठा था और बोला– 'युद्ध से पहले आप क्या करना सबसे अधिक पसंद करते थे ? क्या आप कोई खेल खेलते थे ?'

मैंने कहा– 'हाँ, फुटबॉल।'

'बहुत अच्छा', वह बोला। 'आप दोबारा फुटबॉल खेलने के लायक हो जाएँगे, पहले से भी बेहतर।'

मेरा घुटना नहीं मुड़ता था, और पैर घुटने से टखने तक बिना पिण्डली के सीधा गिरता था, और मशीन घुटने को मोड़ने और ऐसे चलाने के लिए थी जैसे तिपहिया साइकिल चलानी हो। पर घुटना अब तक नहीं मुड़ता था और इसके बजाय मशीन जब मोड़ने वाले भाग की ओर आती थी तो झटका खाती थी। डॉक्टर ने कहा– 'वह सब ठीक हो जाएगा। आप एक भाग्यशाली युवक हैं। आप दोबारा विजेता की तरह फुटबॉल खेलेंगे।

दूसरी मशीन में एक मेजर था जिसका हाथ एक बच्चे की तरह छोटा था। उसका हाथ चमड़े के दो पट्टों के बीच था जो ऊपर–नीचे उछलते थे और उसकी सख्त उँगलियों को थपथपाते थे। जब डॉक्टर ने उसका हाथ जाँचा तो उसने मुझे आँख मारी और कहा– 'और क्या मैं भी फुटबॉल खेलूँगा, कप्तान–डॉक्टर ?' वह एक महान् पटेबाज रहा था, और युद्ध से पहले वह इटली का सबसे महान पटेबाज था।

डॉक्टर पीछे के कमरे में स्थित अपने कार्यालय में गया और वहाँ से एक तस्वीर ले आया। उसमें एक हाथ दिखाया गया था जो मशीनी इलाज लेने से पहले लगभग मेजर के हाथ जितना मुरझाया और छोटा था और बाद में थोड़ा बड़ा था। मेजर ने तस्वीर अपने अच्छे हाथ से उठाई और उसे बड़े ध्यान से देखा।

'कोई जख्म ?' –उसने पूछा।

'एक औद्योगिक दुर्घटना।' –डॉक्टर ने कहा।

'काफी दिलचस्प है, काफी दिलचस्प है।' –मेजर बोला और उसे डॉक्टर को वापस दे दिया।

आपको विश्वास है ?'

'नहीं।' –मेजर ने कहा।

मेरी ही उम्र के तीन और लड़के थे जो रोज वहाँ आते थे। वे तीनो ही मिलान से थे और उनमें से एक को वकील बनना था, एक को चित्रकार बनना था और एक ने सैनिक बनने का इरादा किया था। जब हम मशीनों से छुट्टी पा लेते तो कभी–कभार हम कोवा कॉफी–हाउस तक साथ–साथ लौटते जो कि स्केला के बगल में था। हम साम्यवादी बस्ती के बीच से हो कर यह छोटी दूरी तय करते थे। हम चारो इकट्ठे रहते थे। वहाँ के लोग हमसे नफरत करते थे, क्योंकि हम अफसर थे और जब हम गुजर रहे होते तो किसी शराबखाने से कोई हमें गाली दे देता। एक और लड़का जो कभी–कभी हमारे साथ पैदल आता और हमारी संख्या पाँच कर देता, अपने चेहरे पर रेशम का काला रुमाल बाँधता था, क्योंकि उसकी कोई नाक नहीं थी और उसके चेहरे का पुनर्निर्माण किया जाना था। वह सैनिक अकादमी से सीधा मोर्चे पर गया था और पहली बार मोर्चे पर जाने के एक घंटे के भीतर ही घायल हो गया था। उन्होंने उसके चेहरे को पुनर्निर्मित कर दिया, लेकिन वह एक बेहद प्राचीन परिवार से आता था और वे उसकी नाक को कभी ठीक–ठीक नहीं सुधार सके। वह दक्षिणी अमेरिका चला गया और एक बैंक में काम करने लगा। पर यह बहुत समय पहले की बात थी और तब हममें से कोई नहीं जानता था कि बाद में क्या होने वाला था। तब हम केवल यही जानते थे कि युद्ध हमेशा रहने वाला था पर हम अब वहाँ दोबारा नहीं जाने वाले थे।

हम सभी के पास एक जैसे तमगे थे, उस लड़के को छोड़ कर जो अपने चेहरे पर काला रेशमी रुमाल बाँधता था और वह मोर्चे पर तमगे ले सकने जितनी देर नहीं रहा था। निस्तेज चेहरे वाला लम्बा लड़का, जिसे वकील बनना था, आर्दिती का लेफ्टिनेंट रह चुका था और उसके पास वैसे तीन तमगे थे जैसा हम में से प्रत्येक के पास केवल एक था। वह मृत्यु के साथ एक बेहद लम्बे अरसे तक रहा था और थोड़ा निर्लिप्त था। हम सभी थोड़े निर्लिप्त थे और ऐसा कुछ नहीं था जो हमें एक साथ रखे हुए था, सिवाय इसके कि हम प्रत्येक दोपहर अस्पताल में मिलते थे। हालाँकि, जब हम शहर के निष्ठुर इलाके के बीच से अँधेरे में कोवा की ओर चल रहे होते, और शराबखानों से गाने–बजाने की आवाजें आ रही होतीं और कभी–कभी सड़क पर तब चलना पड़ता जब पुरुषों और महिलाओं की भीड़ फुटपाथ पर ठसाठस भर जाती तो हमें आगे निकलने के लिए उन्हें धकेलना पड़ता। तब हम खुद को किसी ऐसी चीज के कारण आपस में जुड़ा महसूस करते जो उस दिन घटी होती और जिसे वे लोग नहीं समझते थे जो हमसे नफरत करते थे।

हम सब खुद कोवा के बारे में जानते थे, जहाँ पर माहौल शानदार और गरम था और ज़्यादा चमकीली रोशनी नहीं थी और मेजों पर हमेशा लड़कियाँ होती थीं और दीवार पर बने रैक में सचित्र अखबार होते थे। कोवा की लड़कियाँ बेहद देशभक्त थीं, और मैंने पाया कि इटली में कॉफी–हाउस में काम करने वाली लड़कियाँ सबसे ज्यादा देशभक्त थीं..... और मैं मानता हूँ कि वे अब भी देशभक्त हैं। शुरू–शुरू में लड़के मेरे तमगों के बारे में बेहद शिष्ट थे और मुझसे पूछते थे कि मैंने उन्हें पाने के लिए क्या किया था। मैंने उन्हें अपने कागज दिखाए, जो बड़ी खूबसूरत भाषा में लिखे गए थे, पर जो विशेषणों को हटा देने के बाद वास्तव में यह कहते थे कि मुझे तमगे इसलिए दिए गए थे क्योंकि मैं एक अमेरिकी था। उसके बाद उनका व्यवहार थोड़ा बदल गया, हालाँकि बाहरी व्यक्तियों के विरुद्ध मैं उनका मित्र था। जब उन्होंने प्रशंसात्मक उल्लेखों को पढ़ा उस के बाद मैं एक मित्र तो रहा पर मैं दरअसल उनमें से एक कदापि नहीं था, क्योंकि उनके साथ दूसरी बात हुई थी और उन्होंने अपने तमगे पाने के लिए काफी अलग तरह के काम किए थे। मैं घायल हुआ था, यह सच था, लेकिन हम सभी जानते थे कि घायल होना आखरिकार एक दुर्घटना थी। हालाँकि मैं फीतों के लिए कभी शर्मिंदा नहीं था और कभी–कभार कॉकटेल पार्टी के बाद मैं कल्पना करता कि मैंने भी वे सभी काम किए थे जो उन्होंने अपने तमगे लेने के लिए किए थे, पर रात में सर्द हवाओं के साथ खाली सड़कों पर चल कर जब मैं घर आ रहा होता और सभी दुकानें बंद होतीं और मैं सड़क पर लगी बत्तियों के करीब रहने की कोशिश कर रहा होता, तब मैं जानता था कि मैं ऐसे काम कभी नहीं कर पाता । मैं मरने से बेहद डरता था और अक्सर रात में बिस्तर पर अकेला पड़ा रहता था, मरने से डरते हुए और ताज्जुब करते हुए कि जब मैं मोर्चे पर दोबारा गया तो कैसा हूँगा। तमगे वाले वे तीनो शिकारी बाज–से थे और मैं बाज नहीं था, हालाँकि मैं उन्हें बाज लग सकता था जिन्होंने कभी शिकार नहीं किया था। वे तीनों बेहतर जानते थे इसलिए हम अलग हो गए। पर मैं उस लड़के का अच्छा मित्र बना रहा जो अपने पहले दिन ही मोर्चे पर घायल हो गया था, क्योंकि अब वह कभी नहीं जान सकता था कि वह कैसा बन जाता। मैं उसे चाहता था, क्योंकि मेरा मानना था कि शायद वह बाज नहीं बनता।

मेजर, जो महान् पटेबाज रहा था, वीरता में विश्वास नहीं रखता था और जब हम मशीनों में बैठे होते तो वह अपना काफी समय मेरा व्याकरण ठीक करने में गुजारता था। मैं जैसी इतालवी बोलता था उसके लिए उसने मेरी प्रशंसा की थी और हम आपस में काफी आसानी से बातें करते थे। एक दिन मैंने कहा था कि मुझे इतालवी इतनी सरल भाषा लगती थी कि मैं उस में ज़्यादा रुचि नहीं ले पाता था। सब कुछ कहने में बेहद आसान था। 'ओ, वाकई' —मेजर ने कहा। 'तो फिर तुम व्याकरण के इस्तेमाल में हाथ क्यों नहीं लगाते ?' अतः हमने व्याकरण के इस्तेमाल में हाथ डाला और जल्दी ही

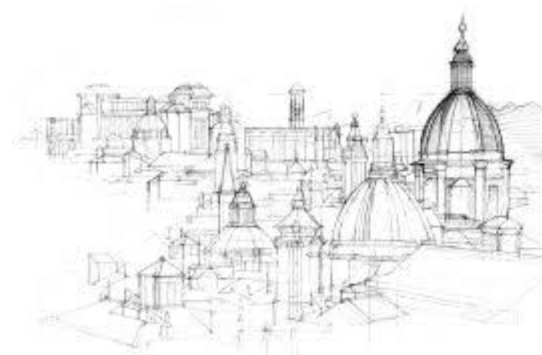

इतालवी इतनी कठिन भाषा हो गई कि मैं तब तक उससे बात करने से डरता था जब तक कि मेरे दिमाग में व्याकरण की तस्वीर साफ नहीं आ जाती।

मेजर काफी नियमित रूप से अस्पताल आता था। मुझे नहीं लगता कि वह एक दिन भी चूका होगा, हालाँकि मुझे पक्का यकीन है कि वह मशीनों में विश्वास नहीं रखता था। एक समय था जब हम में से किसी को भी मशीनों पर भरोसा नहीं था और एक दिन मेजर ने कहा था कि यह सब मूर्खतापूर्ण था। तब मशीनें नई थीं और हम ने ही उनकी उपयोगिता को सिद्ध करना था। यह एक मूर्खतापूर्ण विचार था। मेजर ने कहा था– 'एक परिकल्पना, किसी दूसरी की तरह।' मैंने अपना व्याकरण नहीं सीखा था और उसने कहा कि कि मैं एक न सुधरने वाला मूर्ख और कलंक था और वह स्वयं भी एक मूर्ख था कि उसने मेरे लिए परेशानी

उठाई। वह एक छोटे कद का व्यक्ति था और वह अपना दायाँ हाथ मशीन में घुसा कर अपनी कुर्सी पर सीधा बैठ जाता और सीधा आगे दीवार को देखता जबकि पट्टे बीच में पड़ी उसकी उँगलियों पर ऊपर–नीचे प्रहार करते।

'यदि युद्ध समाप्त हो गया तो तुम क्या करोगे ?'

'मैं अमेरिका चला जाऊँगा।'

'क्या तुम शादी–शुदा हो ?'

'नही , पर मुझे ऐसा होने की उम्मीद है।'

'तुम बहुत बड़े मूर्ख हो।' उसने कहा। वह बहुत नाराज लगा। 'आदमी को कभी शादी नहीं करनी चाहिए। '

'क्यों श्री मैगियोर ?'

'मुझे श्री मैगियोर मत कहो।'

'आदमी को कभी शादी क्यों नहीं करनी चाहिए ?'

'वह शादी नहीं कर सकता। वह शादी नहीं कर सकता।' उसने गुस्से से कहा– 'यदि उसे सब कुछ खोना है तो उसे खुद को सब कुछ खो देने की स्थिति में नहीं लाना चाहिए। उसे खुद को खोने की स्थिति में कतई नहीं लाना चाहिए। उसे वे चीजें ढूँढ़नी चाहिए जो वह नहीं खो सकता।' वह बहुत गुस्से में था, कड़वाहट से भर कर बोल रहा था और बोलते समय सीधा आगे देख रहा था।

'पर यह क्यों जरूरी है कि वह उन्हें खो ही दे ?'

'वह उन्हें खो देगा।' मेजर ने कहा। वह दीवार को देख रहा था। फिर उसने नीचे मशीन की ओर देखा और झटके से अपना छोटा–सा हाथ पट्टों के बीच से निकाल लिया और उसे अपनी जाँघ पर जोर से दे मारा। 'वह उन्हें खो देगा।' वह लगभग चिल्लाया– 'मुझसे बहस मत करो!' फिर उसने परिचारक को आवाज दी जो मशीनों को चलाता था। 'आओ और इस नारकीय चीज को बंद करो।'

वह हल्की चिकित्सा और मालिश के लिए वापस दूसरे कमरे में चला गया। फिर मैंने उसे डॉक्टर से पूछते सुना कि क्या वह उसका टेलीफोन इस्तेमाल कर सकता है और फिर उसने दरवाजा बंद कर दिया। जब वह वापस कमरे में आया तो मैं दूसरी मशीन में बैठा था। उसने अपना लबादा पहना हुआ था और टोपी लगा ली थी और वह सीधा मेरी मशीन की ओर आया और मेरे कंधे पर अपनी बाँह रख दी।

'मुझे बेहद खेद है।' उसने कहा, और अपने अच्छे हाथ से मुझे कंधे पर थपथपाया। 'मेरा इरादा अभद्र होने का नहीं था। मेरी पत्नी की मृत्यु हाल ही में हुई है। तुम्हें मुझे माफ कर देना चाहिए।'

'ओ......' मैंने उसके लिए व्यथित हो कर कहा– 'मुझे भी बेहद खेद है।'

वह अपने निचले होठ काटता हुआ वहीं खड़ा रहा। 'यह बहुत कठिन है।' –उसने कहा। 'मैं इसे नहीं सह सकता।' वह सीधा मुझसे आगे और खिड़की से बाहर देखने लगा। फिर उसने रोना शुरू कर दिया। 'मैं इसे सहने में बिलकुल असमर्थ हूँ।' उसने कहा और उसका गला रुँध गया। और तब रोते हुए , अपने उठे हुए सिर से शून्य में देखते हुए, खुद को सीधा और सैनिक–सा दृढ़ बनाते हुए, दोनो गालों पर आँसू लिए हुए और अपने होठों को काटते हुए वह मशीनों से आगे निकला और दरवाजे से बाहर चला गया।

डॉक्टर ने मुझे बताया कि मेजर की पत्नी, जो युवा थी और जिससे उसने तब तक शादी नहीं की थी जब तक वह निश्चित रूप से युद्ध के लिए असमर्थ नहीं ठहरा दिया गया था, निमोनिया से मरी थी। वह केवल कुछ दिनों तक ही बीमार रही थी। किसी को उसकी मृत्यु की आशंका नहीं थी। मेजर तीन दिनों तक अस्पताल नहीं आया। जब वह वापस आया तो दीवार पर चारो ओर मशीनों द्वारा ठीक कर दिए जाने से पहले और बाद की हर तरह के जख्मों की फ्रेम की गई बड़ी–बड़ी तस्वीरें लटकी थीं। जो मशीन मेजर इस्तेमाल करता था उसके सामने उसके जैसे हाथों की तीन तस्वीरें थीं जिन्हें पूरी तरह से ठीक कर दिया गया था। मैं नहीं जानता, डॉक्टर उन्हें कहाँ से लाया। मैं हमेशा समझता था कि मशीनों का इस्तेमाल करने वाले हम ही पहले लोग थे। तस्वीरों से मेजर को कोई ज्यादा अंतर नहीं पड़ा क्योंकि वह केवल खिड़की से बाहर देखता रहता था।

✉
**ए–5001, गौड़ ग्रीन सिटी, वैभव खंड, इंदिरापुरम, गाजियाबाद– 201014**
**मो. 8512070086**

## कलम को नमन

# प्रणय-चिह्न

**कहानी**

## जयशंकर प्रसाद

(30 जनवरी 1890 – 15 नवंबर 1937)

हिन्दी कवि, नाटकार, कथाकार, उपन्यासकार तथा निबन्धकार थे। वे हिन्दी के छायावादी युग के चार प्रमुख स्तंभों में से एक हैं। उन्होंने हिंदी काव्य में छायावाद की स्थापना की जिसके द्वारा खड़ी बोली के काव्य में कमनीय माधुर्य की रससिद्ध धारा प्रवाहित हुई और वह काव्य की सिद्ध भाषा बन गई। आधुनिक हिंदी साहित्य के इतिहास में इनके कृतित्व का गौरव अक्षुण्ण है। वे एक युगप्रवर्तक लेखक थे जिन्होंने एक ही साथ कविता, नाटक, कहानी और उपन्यास के क्षेत्र में हिंदी को गौरव करने लायक कृतियाँ दीं। कवि के रूप में वे निराला, पन्त, महादेवी के साथ छायावाद के चौथे स्तंभ के रूप में प्रतिष्ठित हुए है, नाटक लेखन में भारतेंदु के बाद वे एक अलग धारा बहाने वाले युगप्रवर्तक नाटककार रहे जिनके नाटक आज भी पाठक चाव से पढते हैं। इसके अलावा कहानी और उपन्यास के क्षेत्र में भी उन्होंने कई यादगार कृतियाँ दीं। विविध रचनाओं के माध्यम से मानवीय करूणा और भारतीय मनीषा के अनेकानेक गौरवपूर्ण पक्षों का उद्घाटन। ४८ वर्षो के छोटे से जीवन में कविता, कहानी,नाटक, उपन्यास और आलोचनात्मक निबंध आदि विभिन्न विधाओं में रचनाएं की। उन्हें 'कामायनी' पर मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्राप्त हुआ था। उन्होंने जीवन में कभी साहित्य को अर्जन का माध्यम नहीं बनाया, अपितु वे साधना समझकर ही साहित्य की रचना करते रहे। कुल मिलाकर ऐसी विविध प्रतिभा का साहित्यकार हिंदी में कम ही मिलेगा जिसने साहित्य के सभी अंगों को अपनी कृतियों से समृद्ध किया हो।

**क्या** अब वे दिन लौट आवेंगे? वे आशाभरी संध्यायें, वह उत्साह–भरा हृदय–जो किसी के संकेत पर शरीर से अलग होकर उछलने को प्रस्तुत हो जाता था–क्या हो गया? जहाँ तक दृष्टि दौड़ती है, जंगलों की हरियाली। उनसे कुछ बोलने की इच्छा होती है, उत्तर पाने की उत्कण्ठा होती है। वे हिलकर रह जाते हैं, उजली धूप जलजलाती हुई नाचती निकल जाती है। नक्षत्र चुपचाप देखते रहते हैं,– चाँदनी मुस्कराकर घूँघट खींच लेती है। कोई बोलनेवाला नहीं! मेरे साथ दो बातें कर लेने की जैसे सबने शपथ ले ली है। रात खुलकर रोती भी नहीं–चुपचाप ओस के आँसू गिराकर चल देती है। तुम्हारे निष्फल प्रेम से निराश होकर बड़ी

इच्छा हुई थी, मैं किसी से संबंध न रखकर सचमुच अकेला हो जाऊँ। इसलिए जन–संसर्ग से दूर इस झरने के किनारे आकर बैठ गया, परन्तु अकेला ही न आ सका, तुम्हारी चिन्ता बीच–बीच में बाधा डालकर मन को खींचने लगी। इसलिए फिर किसी से बोलने की, लेन–देन की, कहने–सुनने की कामना बलवती हो गई। परंतु कोई न कुछ कहता है और न सुनता है। क्या सचमुच हम संसार से निर्वासित हैं–अछूत हैं! विश्व का यह नीरव तिरस्कार असह्य है। ''मैं उसे हिलाऊँगा, उसे झकझोरकर उत्तर देने के लिए बाध्य करूँगा।'' –कहते–कहते एकांतवासी गुफा के बाहर निकल पड़ा। सामने झरना था, उसके पार पथरीली भूमि। वह उधर न जाकर झरने के किनारे–किनारे चल पड़ा। बराबर चलने लगा, जैसे समय चलता है।

सोता आगे बढ़ते–बढ़ते छोटा होता गया। क्षीण, फिर क्रमशः और क्षीण होकर मरुभूमि में जाकर विलीन हो गया। अब उसके सामने सिकता–समुद्र! चारों ओर धू–धू करती हुई बालू से मिली समीर की उत्ताल तरंगें। वह खड़ा हो गया। एक बार चारों ओर आँख फिरा कर देखना चाहा, पर कुछ नहीं, केवल बालू के थपेड़े। साहस करके पथिक आगे बढने लगा। दृष्टि काम नहीं देती थी, हाथ–पैर अवसन्न थे। फिर भी चलता गया। विरल छाया–वाले खजूर–कुंज तक पहुँचते–पहुँचते वह गिर पड़ा। न जाने कब तक अचेत पड़ा रहा। एक पथिक पथ भूलकर वहाँ विश्राम कर रहा था। उसने जल के छींटे दिये। एकान्तवासी चौतन्य हुआ। देखा, एक मनुष्य उसकी सेवा कर रहा है। नाम पूछने पर मालूम हुआ– 'सेवक।'

''तुम कहाँ जाओगे ?''–उसने पूछा।

''संसार से घबराकर एकान्त में जा रहा हूँ।''

''और मैं एकान्त से घबराकर संसार में जाना चाहता हूँ।''

''क्या एकान्त में कुछ सुख नहीं मिला?''

''सब सुख था–एक दुःख, पर वह बड़ा भयानक दुःख था। अपने सुख को मैं किसी से प्रकट नहीं कर सकता था, इससे बड़ा कष्ट था।''

''मैं उस दुःख का अनुभव करूँगा।''

''प्रार्थना करता हूँ, उसमें न पड़ो।''

''तब क्या करूँ?''

''लौट चलो, हम लोग बातें करते हुए जीवन बिता देंगे!''

''नहीं, तुम अपनी बातों में विष उगलोगे।''

''अच्छा, जैसी तुम्हारी इच्छा।'' दोनों विश्राम करने लगे। शीतल पवन ने सुला दिया। गहरी नींद लेने पर जागे। एक दूसरे को देखकर मुस्कराने लगे। सेवक ने पूछा– ''आप तो इधर से आ रहे हैं, कैसा पथ है?''

''निर्जन मरुभूमि।''

''तब तो मैं न जाऊँगा, नगर की ओर लौट जाऊँगा। तुम भी चलोगे?''

''नहीं, इस खजूर–कुंज को छोड़कर मैं नहीं जाऊँगा। तुमसे बोलचाल कर लेने पर और लोगों से मिलने की इच्छा जाती रही। जी भर गया।''

''अच्छा, तो मैं जाता हूँ। कोई काम हो, तो बताओ, कर दूँगा।''

''मेरा! मेरा कोई काम नहीं।''

''सोच लो।''

''नहीं, वह तुमसे न होगा।''

''देखूँगा, संभव है, हो जाय।''

''लूनी नदी के उस पार रामनगर के जमींदार की एक सुंदर कन्या है, उससे कोई संदेश कह सकोगे?''

''चेष्टा करूँगा। क्या कहना होगा?''

''तीन बरस से तुम्हारा जो प्रेमी निवार्सित है, वह खजूर–कुंज में विश्राम कर रहा है। तुमसे एक चिह्न पाने की प्रत्याशा में ठहरा है। अब की बार वह अज्ञात विदेश में जायेगा। फिर लौटने की आशा नहीं है।''

सेवक ने कहा– ''अच्छा, जाता हूँ, परन्तु ऐसा न हो कि तुम यहाँ से चले जाओ, वह मुझे झूठा समझे।''

''नहीं, मैं यहीं प्रतीक्षा करूँगा।'' सेवक चला गया। खजूर के पत्तों से झोपड़ी बनाकर एकांत–वासी फिर रहने लगा। उसको बड़ी इच्छा होती कि कोई भूला–भटका पथिक आ जाता, तो खजूर और मीठे जल से उसका आतिथ्य करके वह एक बार गृहस्थ बन जाता। परन्तु कठोर अदृष्ट–लिपि! उसके भाग्य में एकांतवास ज्वलन्त अक्षरों में लिखा था। कभी–कभी पवन के झोंके से

खजूर के पत्ते खडखड़ा जाते, वह चौंक उठता। उसकी अवस्था पर वह क्षीणकाय स्रोत रोगी के समान हँस देता। चाँदनी में दूर तक मरुभूमि सादी चित्रपटी–सी दिखाई देती।

**2**

**माँ** भूखी थी। बुढिया झोपड़ी में दाने ढूँढ रही थी। उस पार नदी के कगारे पर दोनों की धुँधली प्रतिकृति दिखाई दे रही थी। पश्चिम के क्षितिज में नीचे अस्त होता हुआ सूर्य बादलों पर अपना रंग फेंक रहा था। बादल नीचे जल पर छाया–दान कर रहा था। नदी में धूप–छाँह बिछी थी। सेवक डोंगी लिये, इधर यात्री की आशा में, बालू के रूखे तट से लगा बैठा था। उसके केवल माँ थी। वह युवक था। स्वामी–कन्या से वह किसी प्रेमी का संदेश कह रहा था, राजा (जमींदार) को सन्देह हुआ। वे क्रुद्ध हुए, बिगड़ गये, परंतु कन्या के अनुरोध से उसके प्राण बच गये। तब से वह डोंगी चलाकर अपना पेट पालता था। तमिस्रा आ रही थी। निर्जन प्रदेश नीरव था। लहरियों का कल–कल बन्द था। उसकी दोनों आँखें प्रतीक्षा की दूती थीं। कोई आ रहा है! और भी ठहर जाऊँ–नहीं, लौट चलूँ। डाँडे डोंगी से जल में गिरा दिये। 'छप' शब्द हुआ। उसे सिकता तट पर भी पद–शब्द की भ्रान्ति हुई। रुककर देखने लगा।

''माँझी, उस पार चलोगे?'' –एक कोमल कंठ, वंशी की झंकार।

''चलूँगा क्यों नहीं, उधर ही तो मेरा घर है। मुझे लौटकर जाना है।''

''मुझे भी आवश्यक कार्य है। मेरा प्रियतम उस पार बैठा है। उससे मिलना है। जल्द ले लो।'' –यह कहकर एक रमणी आकर बैठ गई। डोंगी हलकी हो गई, जैसे चलने के लिए नाचने लगी हो। सेवक संध्या के गहरे प्रकाश में उसे आँखें गड़ाकर देखना चाहता था। रमणी खिलखिलाकर हँस पड़ी। बोली– ''सेवक, तुम मुझे देखते रहोगे कि खेना आरम्भ करोगे।''

''मैं देखता चलूँगा, खेता चलूँगा। बिन देखे भी कोई खे सकता है।''

''अच्छा, वही सही। देखो, पर खेते भी चलो। मेरा प्रिय कहीं लौट न जाय, शीघ्रता करो।'' –रमणी की उत्कंठा उसके उभरते हुए वक्ष–स्थल में श्वास बनकर फूल रही थी।

सेवक डाँडे चलाने लगा। दो–चार नक्षत्र नील गगन से झाँक रहे थे। अवरुद्ध समीर नदी की शीतल चादर पर खुलकर लोटने लगा। सेवक तल्लीन होकर खे रहा था। रमणी ने पूछा– ''तुम्हारे और कौन है?''

''कोई नहीं, केवल माँ है।''

नाव किनारे पहुँच गई। रमणी उतरकर खड़ी हो गई। बोली– ''तुमने बड़े ठीक समय से पहुँचाया। परन्तु मेरे पास क्या है, जो तुम्हें पुरस्कार दूँ।''

वह चुपचाप उसका मुँह देखने लगा।

रमणी बोली– ''मेरा जीवन–धन जा रहा है। एक बार उससे अंतिम भेंट करने आई हूँ। एक अँगूठी उसे अपना चिह्न देने के लिए लाई हूँ और कुछ नहीं। परन्तु तुमने इस अंतिम मिलन में बड़ी सहायता की है, तुम्हीं ने उसका संदेश पहुँचाया। तुम्हें कुछ दिये बिना हमारा मिलन असफल होगा, इसलिए, यह चिह्न अँगूठी तुम्हीं ले लो।''

सेवक ने अँगूठी लेते हुए पूछा– ''और तुम अपने प्रियतम को क्या चिह्न दोगी?''

''अपने को स्वयं दे दूँगी। लौटना व्यर्थ है। अच्छा, धन्यवाद!'' –रमणी तीर–वेग से चली गई।

वह हक्का–बक्का खड़ा रह गया। आकाश के हृदय में तारा चमकता थाय उसके हाथ में अँगूठी का रत्न। उससे तारे का मिलान करते–करते झोपड़ी में पहुँचा। माँ भूखी थी। इसे बेचना होगा, यही चिन्ता थी। माँ ने जाते ही कहा– ''कब से भोजन बनाकर बैठी हूँ, तू आया नहीं। बड़ी अच्छी मछली मिली थी। ले, जल्द खा ले।'' वह प्रसन्न हो गया।

**3**

**एकांतवासी** बैठा हुआ खजूर इकट्ठा कर रहा था। अभी प्रभात का कोमल सूर्य खगोल में बहुत ऊँचा नहीं था। एक सुनहली किरण–सी रमणी सामने आ गई। आत्मविस्मृत होकर एकांतवासी देखने लगा।

''स्वागत अतिथि! आओ बैठो।''

रमणी ने आतिथ्य स्वीकार किया। बोली– ''मुझे पहचानते हो?''

''तुम्हें न पहचानूँगा, प्रियतमे! अनंत पथ का पाथेय कोई प्रणय–चिह्न ले आई हो, तो मुझे दे दो! इसीलिए ठहरा हूँ।''

''लौट चलो। इस भीषण एकांत से तुम्हारा मन नहीं भरा?''

''कहाँ चलूँगा? तुम्हारे साथ जीवन व्यतीत करने का साधन नहीं, करने भी न पाऊँगा, लौटकर क्या करुँगा? मुझे केवल चिह्न दे दो, उसी से मन बहलाऊँगा।''

''मैं उसे पुरस्कार–स्वरूप दे आई हूँ। उसे पाने के लिए तो लूनी तट तक चलना होगा।''

''तो चलूँगा।''

यात्रा की तैयारी हुई। दोनों लौट चले। सेवक जब संध्या को डोंगी लेकर लौटता है, तब उसके हृदय में उस रमणी की सुध आ जाती है। वह अँगूठी निकालकर देखता और प्रतीक्षा करता है कि रमणी लौटे, तो उसे दे दूँ। उसे विश्वास था, कभी तो वह आवेगी। डोंगी नीचे बँधी थी। वह झोपड़ी से निकलकर चला ही था कि सामने रमणी आती दिखाई पड़ी। साथ में एक पुरुष था। न जाने क्यों, वह डोंगी पर जा बैठा। दोनों तीर पर आकर खड़े हो गये। रमणी ने पूछा– ''मुझे पहचानते हो?''

''अच्छी तरह।''

''मैंने तुम्हें कुछ पुरस्कार दिया था। वह मेरा प्रणय–चिह्न था। मेरा प्रिय मुझे नहीं लेगा, उसी चिह्न को लेगा। इसीलिए तुमसे विनती करती हूँ कि उसे दे दो।''

''यह अन्याय है। मेरी मजूरी मुझसे न छीनो।''

''मैं भीख माँगती हूँ।''

''मैं दरिद्र हूँ, देने में असमर्थ हूँ।''

निरुपाय होकर रमणी ने एकांतवासी की ओर देखा। उसने कहा– ''तुमने तो उसे लौटा देने के लिए ही रख छोड़ा है। वह देखो, तुम्हारी उँगली में चमक रहा है, क्यों नहीं दे देते?''

''मैं समझ गया, इसका मूल्य परिश्रम से अधिक है। तो चलो, अबकी दोनों की सेवा करके इसका मूल्य पूरा कर दूँ परन्तु दया करके इसे मेरे ही पास रहने दो। जिन्हें विदेश जाना है, उनको नौका की यात्रा बड़ी सुखद होती है।'' –कहकर एक बार उसने झोपड़ी की ओर देखा। बुढ़िया मर चुकी थी। खाली झोपड़ी की ओर से उसने मुँह फिरा लिया। डाँडे जल में गिरा दिये।

रमणी ने कहा– ''चलो, यात्रा तो करनी ही है, बैठ जाय।''

एकांतवासी हँस पड़ा। दोनों नाव पर बैठ गये। नाव धारा में बहने लगी। रमणी ने हँसकर पूछा– केवल देखोगे या खेओगे भी?''

''नाव स्वयं बहेगी, मैं केवल देखूँगा ही।''


**फार्म – 4**

समाचार पत्र पंजीयन केन्द्रीय कानून 1956 के आठवें नियम के अन्तर्गत **'मधुराक्षर' त्रैमासिक पत्रिका** से संबंधित स्वामित्व और अन्य बातों का आवश्यक विवरण–

1. प्रकाशन का स्थान :
   **जिला कारागार के पीछे, मनोहर नगर, फतेहपुर (उ.प्र.) 212601**

2. प्रकाशन की आवर्तिता :
   **त्रैमासिक**

3. प्रकाशक/मुद्रक का नाम :
   **बृजेन्द्र अग्निहोत्री**

4. राष्ट्रीयता :
   **भारतीय**

5. सम्पादक का नाम :
   **बृजेन्द्र अग्निहोत्री**
   राष्ट्रीयता :
   **भारतीय**
   पूरा पता :
   **जिला कारागार के पीछे, मनोहर नगर, फतेहपुर (उ.प्र.) 212 601**

6. कुल पूंजी का 1 प्रतिशत से अधिक शेयर वाले भागीदारों का नाम व पता :
   **स्वत्वाधिकारी बृजेन्द्र अग्निहोत्री**

मै बृजेन्द्र अग्निहोत्री घोषित करता हूँ कि मेरी जानकारी एवं विश्वास के अनुसार उपर्युक्त सभी विवरण सत्य हैं।

**–बृजेन्द्र**

## कलम को नमन

**कविता**

**रामधारी सिंह 'दिनकर'**
(23 सितंबर 1908–24 अप्रैल 1974)

हिन्दी के एक प्रमुख लेखक, कवि व निबन्धकार थे। वे आधुनिक युग के श्रेष्ठ वीर रस के कवि के रूप में स्थापित हैं। बिहार प्रांत के बेगुसराय जिले का सिमरिया घाट उनकी जन्मस्थली है। उन्होंने इतिहास, दर्शनशास्त्र और राजनीति विज्ञान की पढ़ाई पटना विश्वविद्यालय से की। उन्होंने संस्कृत, बांग्ला, अंग्रेजी और उर्दू का गहन अध्ययन किया था। दिनकर स्वतन्त्रता पूर्व एक विद्रोही कवि के रूप में स्थापित हुए और स्वतन्त्रता के बाद राष्ट्रकवि के नाम से जाने गये।

वे छायावादोत्तर कवियों की पहली पीढ़ी के कवि थे। एक ओर उनकी कविताओ में ओज, विद्रोह, आक्रोश और क्रान्ति की पुकार है तो दूसरी ओर कोमल श्रृंगारिक भावनाओं की अभिव्यक्ति है। इन्हीं दो प्रवृत्तियों का चरम उत्कर्ष हमें उनकी 'कुरुक्षेत्र' और 'उर्वशी' नामक कृतियों में मिलता है। 'उर्वशी' को भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार जबकि 'कुरुक्षेत्र' को विश्व के 100 सर्वश्रेष्ठ काव्यों में 74वाँ स्थान दिया गया।

**परंपरा को अंधी लाठी से मत पीटो**
उसमें बहुत कुछ है
जो जीवित है
जीवन दायक है
जैसे भी हो
ध्वंस से बचा रखने लायक है

पानी का छिछला होकर
समतल में दौड़ना
यह क्रांति का नाम है
लेकिन घाट बांध कर
पानी को गहरा बनाना
यह परंपरा का नाम है

परंपरा और क्रांति में
संघर्ष चलने दो
आग लगी है, तो
सूखी डालों को जलने दो

मगर जो डालें
आज भी हरी हैं
उन पर तो तरस खाओ
मेरी एक बात तुम मान लो

लोगों की आस्था के आधार
टूट जाते है
उखड़े हुए पेड़ों के समान
वे अपनी जड़ों से छूट जाते है

परंपरा जब लुप्त होती है
सभ्यता अकेलेपन के
दर्द मे मरती है
कलमें लगाना जानते हो
तो जरूर लगाओ
मगर ऐसी कि फलों में
अपनी मिट्टी का स्वाद रहे

और ये बात याद रहे
परंपरा चीनी नहीं मधु है
वह न तो हिंदू है, ना मुस्लिम

## कवितायें

**प्रेम नंदन**

फतेहपुर (उ.प्र.) के फरीदपुर, हुसेनगंज में जन्में प्रेम नंदन ने लेखन और आजीविका की शुरुआत पत्रकारिता से की। दो–तीन वर्षों तक पत्रकारिता करने तथा तीन–चार वर्षों तक भारतीय रेलवे में स्टेशन मास्टरी करने के पश्चात सम्प्रति सिर्फ मास्टरी। समसामयिक लेखन में कविता, लघुकथा, कहानी, आलोचना विधा के माध्यम से उभरते हुए सशक्त हस्ताक्षर। 'सपने जिंदा हैं अभी' काव्य–संग्रह प्रकाशित और 'यही तो चाहते हैं वे' प्रकाशनाधीन।

### यही तो चाहते हैं वे

लड़ना था हमें
भय, भूख, और भ्रष्टाचार के खिलाफ !

हम हो रहे थे एकजुट
आम आदमी के पक्ष में
पर उन लोगों को
नहीं था मंजूर यह !

उन्होंने फेंके कुछ ऐंठे हुए शब्द
हमारे आसपास
और लड़ने लगे हम
आपस में ही !

वे मुस्कुरा रहे हैं दूर खड़े होकर
और हम लड़ रहें हैं लगातार
एक दूसरे से
बिना यह समझे
कि यही तो चाहते हैं वे !

### आग से इश्क हो जाए तो फिर...

पनीली हथेलियों में फंसे
अपने ढुलमुल सिर को मसलकर
उछाल देना चाहता हूँ मैं
आकाश कि अतल गहराइयों में
ताकि भर सकें
पूरी धरती के जख्म,
बिखेर देना चाहता हूँ
रक्त का एक–एक कतरा
शुष्क, जहरीली हवाओं में
ताकि बची रह सके
हवाओं कि नमी और कोमलता

होठों को पूरी ताकत से भींचकर
चाहता हूँ चीखना
मैं जोर–जोर से
ताकि पिघल सके
सत्ता के कानों में घुला हुआ सीसा

इन दिनों बहुत कुछ
करना चाहता हूँ मैं

ये छोटी दृसी चिंगारी
बदलेगी एक दिन जरूर
धधकती हुई आग में

आग से इश्क हो जाए तो फिर
कुछ भी असंभव नहीं !

### हत्यारे की इच्छा

मेरे सीने पर बैठे
हत्यारे ने पूँछा मुझसे–
कोई अंतिम इच्छा ?
अपनी मौत मरना चाहता हूँ
कहा मैंने ।
वह जोर से चीखा–
ये तो असंभव है
हमारा धंधा चौपट करना चाहते हो ?
इस तरह
एक हत्यारे की इच्छा के आगे
अन्य इच्छाओं की तरह ही
अधूरी रह गई
मेरी
यह अंतिम इच्छा भी !

✉
उत्तरी शकुन नगर, सिविल लाइन्स, फतेहपुर, (उ०प्र०)
9336453835

## कवितायें

### डॉ. प्रशान्त द्विवेदी

ज़िन्दगी के गीत में
इक धुन सरीखी तुम
मन सरीखी तुम,
मेरी धड़कन सरीखी तुम।
मरुथलों की रेत पर
जीवन सरीखी तुम
वक्त के संगीत में
रूनझुन सरीखी तुम।
महफिलों की रोशनी,
घर का उजाला तुम
दृष्टि मेरी तुम,
मेरी चितवन सरीखी तुम।
राम की सीता हो या
तुम कृष्ण की राधा
फूल जैसी, या कहूँ
मधुवन सरीखी तुम।

**राजकीय महिला महाविद्यालय, फतेहपुर**
**9839970830**

### शिवशरण सिंह चौहान 'अंशुमाली'

पहले–पहल मुझे तो बेटी ही चाहिए
रोशन हो जिन्दगी यह, बेटी ही चाहिए

लक्ष्मी का आगमन हो, मेरा एक स्वप्न है
मेरी खुशी वही एक, बेटी ही चाहिए

मेरे घर में चाँद उतरे. हे ईश! विनय सुन लो–
माँ–बाप का खिलौना, बेटी ही चाहिए

मैं पूज लूं चरण, कन्या का दान कर लूं
मुझे स्वर्ग मिलेगा, बेटी ही चाहिए

आँगन में फुदके मेरी, वह सोन चिरैया
छोटी सी जिन्दगी में, बेटी ही चाहिए

किलकारी गूंजे घर में, वह जग की सर्जना है
एक आश 'अंशुमाली' बेटी ही चाहिए

**२५३253 ई.डब्ल्यू.एस., आवास विकास, फतेहपुर (उ.प्र.)**
**9236584625**

### सत्येन्द्र कुमार

### अपनी भूख मिटाऊंगा

मेरी भूख
और ये शहर की दुकानें,
आकाश को छूने को
दिन भर
बढ़ती रहती हैं
मुझ पर हँसती रहती है

साथ मे खड़ा
जैसे वो मेरा पड़ोसी
रिक्शेवाला,
सवारी पा जाने पर
मुझे देखता है और
चलता रहता है
मुझ पर हँसता रहता है

और ये कुछ पौधे भी देखो
जो भादौ की बारिश
बैशाख की तपन
सहते है फिर भी
बढ़ते रहते हैं
मुझ पर हँसते रहते हैं

बस कुछ घंटे और
फिर सिर के उपर से
एक चाँद निकलेगा
शहर की दुकानें, रिक्शेवाला,
और वो पौधा भी
सब चुप हो जाएंगे
मै सब को चिढ़ाता
सब पर हँसता
अपनी भूख मिटाऊंगा

**68ए/58, तांबेश्वर नगर, फतेहपुर**
**9457826475**

## क्षणिकायें

## सपना मांगलिक

**1**

बंदूक की नोक पर
गिरी लाश सपनों की
उसकी कुछ उसके अपनों की
जिस धर्म की कर रहे थे वो रवायतें
मालूम नहीं थी बेचारी को उसकी आयतें

**2**

लावारिस घूमती माँ
घर किसके जा बसती ?
बेटों ने बसा ही ली थी
अपनी–अपनी गृहस्थी

**3**

पीड़िता के दर्द का अनुभव
उसने अपने अंदाज में बोला
गलती मात्र यह हुई कि
मीडिया के सामने मुंह खोला

**4**

पिंजरे के पंछी का
पिंजरे में घुट रहा दम
उड़ने को बेताव वह
फड़फड़ाने लगा पंख
जब मालिक ने खा तरस
पिंजरा खोला
तो मोह के इस पिंजरे से
उसने चिपका लिए थे पंख
घबरा उठा देखकर नभ अनंत
जैसे मानव अपना अंत

**5**

पति का ध्यान, सम्मान
सास ससुर की सेवा
ननदों का आदर सत्कार
उसे परवाह कहाँ तनिक है
शायद नई बहु आधुनिक है

**9**

वहशियों के सींखचे में
लड़की बनी कबाब
खींसे निपोर कहे कानून
दुष्कर्मी
नाबालिग है जनाब ।

**6**

शाम के धुंधलके में
किसी चीज पर पडा पाँव
शायद कोई जीव था निष्प्राण
मैंने घबराकार पैर हटाया
नीचे एक कुचला हुआ
घायल रिश्ता पाया
भर रहा था जो आखिरी सांस
कराह रहा था अकेला
बुदबुदा रहा था होठों में
दुनिया एक मेला

**7**

चील कौओं के लाश से
स्वार्थपूर्ति के अनुबंध
आ रही सड़ांध इनसे
बढ़ती जा रही दुर्गन्ध
मत खोलो मतलब की खिडकियों को
इनसे झाँक रहे हैं बेहया संबंध

**8**

आस्तीन के साँपों से ज्यादा
जहरीले होते हैं संदेह के सांप
आस्तीन में फड़फड़ाते सांप को
महसूस कर सकते हैं
मगर किसी दिमाग में
कुंडली मार बैठे हुए नाग को
भला कैसे पकड़ोगे आप

**10**

वियोगी नहीं
होना होगा कर्मयोगी
आज के कवि को
तभी तो सत्ता,अपराध,
और रूढ़ियों के अँधेरे को
ला सकेगा भेदने वो
एक नए रवि को

✉
एफ–659, कमला नगर, आगरा 282005 (9548509508)

## कवितायें

# तेज राम शर्मा

## कविता कहती है

कविता कहती है
मुझे लिखो
मैं लिखता हूँ
'र' से राम
'ब' से बाण
रामबाण

कविता कहती है
मुझे सुनो
मैं सुनता हूं
मटके में
दूध की धार का संगीत

कविता कहती है
मुझे बांचो
मैं बांचता हूँ
'अ' से अनार

कविता कहती है
मुझे सूँघो
मैं घर भर में सूँघता हूँ
खुद–बुद
पकते चावल की खुश्बू

कविता कहती है
मुझे महसूस करो
और मैं हो जाता हूँ
आपाद मस्तक
.....संवेदित!

✉
**श्री रामकृष्ण भवन, अनाडेल, शिमला–171003**

# रवि रश्मि 'अनुभूति'

## सवालों के ख़्वाब

हँसकर अपने दर्द क्यों छुपाता है
मन रो–रो आँसू क्यों बहाता है
कैसी होगी परिस्थिति हाय!
क्यों किसान आत्महत्या कर जाता है
क्यों सत्ताधारियों को तरस नहीं आता है
क्यों कोई भी ये ज्वलंत सवाल सुलझा नहीं पाता है
क्यों बेहाल है देश, नेता के कृत्यों पर
क्यों नेता देश सँभाल नहीं पाता है
राजनीति के नाम पर सत्ता से खेलने वालों
क्यों देश तुम्हारे नाम पर चल जाता है
कैसी यह राजनीति, कैसा यह खेल
यह सवाल क्यों कोई नेताओं से पूछ नहीं पाता है
राजनीति ही भ्रष्ट हो गयी, नेता–अफसर भ्रष्ट
विस्तार पा गया क्यों भ्रष्टाचार
प्रगति–पथ पर बढ़ते देश में
क्यों बढ़ गये अनाचार–अत्याचार
महँगाई की डोर क्यों नहीं खींच पाते हैं
क्यों गरीब कर्ज में डूब जाता है
जीने का हक सबको है, फिर क्यों
यह सवाल सबको साल जाता है
कल–कारखानों के शोर में पेट पालने की व्यथा पर
क्यों नारी की चीखें दब जाती हैं
सत्ता के गलियारों में, उन्नति के नाम पर क्यों
नारी की अस्मत लूटी जाती है
क्यों पर–नारी को छूने की हिम्मत
कोई पति जुटाता है,
कलयुग है भई, कलयुग ऐसा है यह
प्रदूषित हो गया पर्यावरण
पतित सारे कृत्य हो गये,
नहीं रहा शुद्ध आचरण
पूछ रहा अब मुझसे मेरा ही मन,
कहाँ जा रहा यह देश हमारा
सोने की चिड़िया जो कहलाता था
अल्यूमिनियम का भी, क्यों रहा न देश हमारा
जाग, अब तो जाग नराधम!
सभी सवालों के दे दे जवाब
त्यागकर सारे मलिन विचार
पूरे होने दे सवालों के ख़्वाब......

✉
**204–ए, शगुन रेजीडेंसी ,सैक्टर–17, प्लॉट न.–22**
**रोडपाली, नवी मुम्बई–410218 ( 9920796787)**

**कवितायें**

## शबनम शर्मा

**कचनार**

दिखता मुझे
सामने वाले पहाड़ पर
हर रोज दूर से
कचनार का वो पेड़
निहारती, छूना चाहती,
ठीक वैसे ही
जैसे छुआ तुमने
शहर जाने से पहले
आज भी इसके खिलते ही
हो जाता, तुम्हारा इन्तजार
डगमगा उठती हूँ मैं
अनायास कदम इसकी
ओर बढ़ते हैं हर बरस
ये देखने की
कहीं तुम वादा निभाने
आ तो नहीं गए।

**खिलौना**

बीच बाजार
खिलौने वाले के खिलौने
की आवाज से
आकर्षित हो
कदम उसकी तरफ बढ़े,
मैंने छुआ, सहलाया उन्हें
व एक खिलौने को अंक में भरा
कि पीछे से कर्कश आवाज ने
मुझे झंझोड़ा—
''तुम्हारी बच्चों की सी
हरकतें कब खत्म होंगी''
सुनकर मेरा नन्हा बच्चा
सहम सा गया
मेरी प्रौढ़ देह के अन्दर।

**पुराना घर**

हिलती चौखट,
टूटा फर्श,
काँपती दीवारें लिये
उदास,
ताले को थमाकर
अपना अस्तित्व,,
खड़ा पुराना घर।
ठंडा हो चुका चुल्हा,
काई सूख गई मटके की
जार—जार हो गया बोहिया,
पटड़ियाँ तरस रही भोजन की परोस,
छाज टेड़ा हो झाँक रहा
दिखा रहा मुझे मंजे की हालत
जिसका बाण समय के
थपेड़ों में टूट गया,
जवाब दे रहा।
पर एक संदेश समेटे है पुराना घर
मैं तुम्हारा पुरखा हूँ,
तुम्हारी पहचान,
तुम्हारी धरोहर।

**बंटवारा**

कितने टुकड़ों में,
बंट सकती थी मैं,
मैंने खुद को
खुद की नजर में
अनगिनत किरचों
में देखा।
डरने लगी अपने
अस्तित्व से,
खो बैठी अपना ही
विश्वास,
क्योंकि हर मैं
को जोड़कर बनता है 'हम'
हम ही बनाते हैं विश्व,
व बाँटते हैं टुकड़ों—टुकड़ों में।

**अनमोल कुंज, पुलिस चौकी के पीछे, मेन बाजार, माजरा, तह. पांवटा साहिब, जिला सिरमौर, हि.प्र. ( 9816838909)**

## गजल

डॉ. बालकृष्ण पाण्डेय

### एक

बिखर डाल से फूल गया है।
सब उसके प्रतिकूल गया है।।
सूख चुके हैं आम बाग के।
उगता द्वार बबूल गया है।
गंगा मंदिर सत्य अहिंसा
उसके लिए फिजूल गया है।
खुशियों में भी रोते–रोते,
जो हँसना भी भूल गया है।
खादी–खद्दर की साजिश में,
झूठा जुर्म कबूल गया है।
बेमौसम बारिश में फँस कर,
वह फंदे पर झूल गया है।

### दो

वही घिसा पैमाना फिर से।
सारा ताना बाना फिर से।।
पाँच साल तक रहे गुमशुदा।
चालू आना जाना फिर से।।
आँख चढ़ाये रहे फेर मुँह।
हिला हाथ मुसकाना फिर से।।
अकड़ हुई गुम पाँव गाँव में।
बने हुए बुतखाना फिर से।।
ले बीबी बच्चों को पैदल।
गढ़ने लगे बहाना फिर से।।
कसमें सपने यादें वादे ।
मिसरी सा घुल जाना फिर से।।
मंदिर मस्जिद जाति रवायत।
उकसाना उलझाना फिर से।।
दिखा दिया मैदान मार के।
देखो आँख दिखाना फिर से।।

### तीन

साधो उनकी जात निराली
उनकी तो हर बात निराली
सब के दिन कटते न काटे
उनकी तो हर रात निराली
हर घर में सूखा पसरा है
उनके घर बरसात निराली
जिसको खा सुध–बुध सब भूलें
बँटती है खैरात निराली
जन–जन को बग्घी में नाधे
राजा की औकात निराली
विदा कराने निकल पड़ी अब
गूँगों की बारात निराली

### चार

अपना नहीं ठिकाना घर में
गैरों का मैखाना घर में
नर तो दर–दर खाक छानते
केवल बचे जनाना घर में
पेट गृहस्थी का न भरता
रहता रोना–गाना घर में
हर कोने में मार कुण्डली
डर बैठा अनजाना घर में
मजबूरी में कला सध गयी
हर दुःख–दर्द पचाना घर में
कोई नहीं उजाड़ सकेगा
जब तक आबोदाना घर में
अपने ही रहने के खातिर
देते हैं हर्जाना घर में।

### पाँच

बादल प्रलय बने हैं ऐसे।
कैसे काम चलेगा ऐसे।।
मुजरा हुआ अकाल साल में।
अपनी जेब हुई बिन पैसे।।
बच्चों ने ओले भर झोल।
माँ से बोले छेने जैसे।।
सजी रात सेठों की महफिल।
सोहर गाते जनखे जैसे।।
फिर से लगे जनाजे उठने।
गाँव–गली वैसे के वैसे।।
कारोबार चल पड़े देखो।
बाल किशन जैसे के तैसे।।

✉
गोस्वामी तुलसीदास
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, चित्रकूट
(9450945041)

शोध–लेख

डॉ. हितेन्द्र कुमार मिश्र

# हिन्दी पत्रकारिता और जन–विश्वास

**खबरें** मुद्रण पत्रकारिता की प्राण तत्व हैं। खबरों ने पत्रकारिता के क्षेत्र में अपनी महत्वपूर्ण स्थिति इसके प्रारम्भिक दौर से ही स्थापित की है। दरअसल इस तथ्य के पीछे पत्रकारिता का प्रारम्भ से ही मिशनरी होना है। भारत में पत्रकारिता का प्रारम्भ ऐसे समय में हुआ जब भारत पराधीन था। देश की जनता अनायास ही अंग्रेजी उत्पीड़न की शिकार थी। अंग्रेजी शासन के खिलाफ जनता का मजबूत पक्षधर बनकर पत्रकारिता खड़ी हुई। जनता का भरोसा अखबारों ने अर्जित किया। अखबारों की इसी पक्षधरता के कारण अखबारों को बंद होना पड़ा। पत्रकारों को यातनाएं सहनी पड़ी। पत्रकारों को जेल जाना पड़ा। किंतु, अंग्रेजी शासन की इन असह्य यातनाओं के बावजूद अखबारों ने अपनी नीतियों से समझौता नहीं किया आवश्यकतानुसार भूमिगत अखबार निकाले। तथ्य गवाह हैं कि इन पत्रों के प्रकाशकों/सम्पादकों को अंग्रेजी पुलिस तो ढूँढ ही रही थी साथ ही उतनी ही सरगर्मी से इनके पढ़ने वालों की भी तलास होती थी। इन अखबारों के पढ़ने वालों को भी जेल जाना पड़ता था। जेल की कठिन यातना के बाद भी देश प्रेमी अखबारों को नहीं छोड़ते थे। अखबारों की एक आवाज पर लाखों लोग सड़क पर निकल आते थे। अकबर इलाहाबादी ने इसकी इसी ताकत को पहचानकर लिखा कि 'जब तोप मुकाबिल हो तो अखबार निकालो'। यह थी पत्रकारिता की ताकत जो उसे किसी कार्पोरेट की पक्षधरता की वजह से नहीं अपितु जनपक्षधरता की वजह से मिली थी। खबरों की ताकत से मिली थी। खबरों की विश्वसनीयता से मिली थी। खबरों की विश्वसनीयता का मूल कारण प्रारम्भिक दौर की मिशनरी पत्रकारिता है।

पत्रकारिता अपने प्रारम्भिक दौर से ही जिन मूल्यों को लेकर आयी उसे उसने बाद में कायम नहीं रखा। बाजार के प्रभाव में गलाकाट प्रतिस्पर्धा के कारण पत्रकारिता का विश्वास जनता के बीच घटता गया। इस विश्वास का नजदीकी और समानुपातिक सम्बन्ध उसकी पाठकीयता से है।

## पत्रकारिता का मिशनरी स्वरूप–

हिन्दी पत्रकारिता के प्रारम्भिक वर्षों को ध्यान से देखें तो भारत में इसके प्रारम्भ करने का प्रथम प्रयास विलियम बोल्ट्स ने किया जो तत्कालीन निरंकुश शासन व्यवस्था के आगे प्रयास मात्र बनकर ही रह गया। बाद में प्रकाशित अपनी पुस्तक कंशीडरेशन आन इंडियन अफेयर्स में उन्होंने इसकी चर्चा की है। विलियम बोल्ट्स ने अपने मन की बात जिसका सम्बन्ध सब से था कहने की योजना बनायी थी।

यह वह समय था जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी अपने व्यापारिक उद्देश्य के साथ–साथ यहाँ की देशी परिस्थितियों का लाभ उठाते हुए अपने साम्राज्य एवं व्यापार का विस्तार करती जा रही थी।

प्लासी की लड़ाई में सन् 1757 ई. में बंगाल के नबाब सिराजुद्दौला को परास्त कर अंग्रेजों ने अपने साम्राज्य का विस्तार आरम्भ किया। बक्सर की लड़ाई में मुगल सम्राट शाहआलम एवं इसी क्रम में कड़ा, असी, लासवारी की लड़ाईयों में अंग्रेजों को मिली जीत ने उन्हें अहंकार एवं मद से परिपूर्ण कर दिया। उनके अत्याचार एवं शोषण का शिकंजा कसता जा रहा था। ऐसी स्थिति में मानव एवं मानवीय मूल्यों की परवाह उन्हें नहीं थी। विलियम बोल्ट्स ने इन्हीं परिस्थितियों में अपने मन की बात कहने की कोशिश की। निश्चित रूप से बोल्ट्स के मन की बात मात्र बोल्ट्स के मन की बात नहीं थी, वह सम्पूर्ण भारतीय आवाम के मन की बात थी, वह आम जनता के मन की बात थी। इसके अनन्तर जेम्स आगस्टस हिकी अथवा क्लार्क मासमिन का पत्रकारिता के क्षेत्र में आगमन किसी व्यवसायिक उद्देश्य से नहीं था बल्कि उनकी जनपक्षधरता की वजह से थी। स्वाभाविक रूप से जनता का भरोसा भी खबरों पर था।

हिन्दी पत्रकारिता के प्रारम्भिक दौर की स्थितियाँ ऐसी ही थीं। सन् 1826 ई. में प्रारम्भ उदन्त मार्त्तण्ड ने महज उन्यासी अंकों का जीवन पाया तो उसके पीछे भी ऐसे ही कारण थे। इतिहास एवं समय के प्रमाण पर यह तो निश्चित है कि अंग्रेजों का भारत के साथ दृष्टिकोण व्यवसायिक ही था। उन्हें भारत से कोई प्रेम या लगाव नहीं था। साथ ही एक के बाद एक देशी राजाओं को परास्त कर साम्राज्य के विस्तार की नीति एवं अन्य अनेक कारणों से भारतीय जनमानस अंग्रेजों के खिलाफ होता जा रहा था। भारत में इस पराधीनता के प्रति जनमानस में विद्रोह की भावना पैदा होती जा रही थी। अंग्रेज अपने खिलाफ उठने वाली इस आवाज को दबा देना चाहते थे और इसी कारण वे इन पत्रों की अभिव्यक्ति पर पाबंदियॉ लगाते जा रहे थे। इन पाबंदियों का उल्टा असर पड़ रहा था। भारतीय जनमानस का समाचार पत्रों के प्रति लगाव बढ़ता जा रहा था। समापार पत्रों की कमर तोड़ने के लिए अंग्रेजों ने सरकारी सहायता बंद करने, अखबारों को प्रतिबंधित करने, सम्पादकों/प्रकाशकों को जेल में डालने जैसे निर्णय लिये। अंग्रेजों की इस नीति को जनता समझ रही थी तथा पत्र–पत्रिकाओं से उनकी नजदीकी बढ़ती जा रही थी।

हिन्दी पत्रकारिता के इस प्रारम्भिक दौर में समाचार पत्रो में बनावटीपन नहीं था। उनका उद्देश्य स्पष्ट तौर पर जनपक्षधरता थी। जनता की समस्याओं और जनता की भावनाओं का उनमें प्रमुख स्थान था। उदन्त मार्त्तण्ड और उस समय की सभी पत्र–पत्रिकाओं में ऐसी भावना प्रमुख थी और उनका उद्देश्य परतंत्रता से मुक्ति का प्रयास बना। इस समय के पत्र जनता की लड़ाई लड़ रहे थे।

हिन्दी पत्रकारिता में प्रमुख बदलाव हिन्दी साहित्य के भारतेन्दु युग में होता है। भारतेन्दु युग में साहित्य का माध्यम पत्रकारिता बनती है। स्वयं भारतेन्दु ने कविवचन सुधा, हरिश्चन्द्र मैगजीन, हरिश्चन्द्र चन्द्रिका और बालाबोधिनी आदि पत्रों का प्रकाशन किया। इस युग में अन्य अनेक साहित्यकारों ने भी पत्र प्रकाशन में अपनी रूचि दिखाई। भारतीय सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं राजनीतिक दशा के साथ–साथ पराधीनता इनकी अभिव्यक्ति के मूल निशाने पर थी।

पत्रकारिता के क्षेत्र में भारतेन्दु का समय वह समय है जब लगभग सम्पूर्ण भारतवर्ष पर अंग्रेजों का आधिपत्य स्थापित हो चुका था। भारतीय जनता की इस पराधीनता से मुक्ति के लिए अकुलाहट जगजाहिर हो चुकी थी। देशी राजाओं के अंग्रेजों के खिलाफ संगठन तैयार होने लगे थे। भारतीय स्थितियों को भॉपते हुए कम्पनी का शासन समाप्त कर भारत को ब्रिटिश उपनिवेश बनाया जा चुका था। 'पराधीन सपनेहुँ सुख नाही' और 'भारत दुर्दशा न देखी जायी' लिखकर भारतेन्दु ने साहित्य को

जनपक्षधरता के प्रति प्रतिवद्ध बनाने का कार्य किया। भारतेन्दु और उनके युगीन पत्रकार– साहित्यकार पं. प्रताप नारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट आदि ने भी इस जनभावना को अपनी लेखनी का आधार बनाया। देश में पराधीनता के विरुद्ध एक लड़ाई सड़क पर हो रही थी तो दूसरी लड़ाई कलम के साथ अखबार निकाल कर लड़ी जा रही थी।

भारतेन्दु के उपरान्त और देश की आजदी के पूर्व तक लगभग पचासों ऐसी पत्र–पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं जिन्होंने जनता के विषय से अपने को जोड़े रखा। इस समय की कुछ पत्र–पत्रिकाएँ साहित्य का बाना पहनकर दूसरे प्रकार से जनता के विषय से अपने को जोड़े रखा। कुल मिलाकर भारतीय जनमानस की समस्या यहाँ की गरीबी, अशिक्षा, सामाजिक कुप्रथाएँ एवं आर्थिक असमानता तथा परतंत्रता यहाँ की मुख्य समस्या थी। इस समय प्रकाशित होने वाली पत्र–पत्रिकाओं ने प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष तौर पर इसके प्रति अपनी प्रतिवद्धता जाहिर की। इस समय प्रकाशित होने वाले हंस का उद्देश्य दृष्टव्य है – ''हंस के लिए परम सौभाग्य की बात है कि उसका जन्म ऐसे शुभ अवसर पर हुआ जब भारत में एक नए युग का आगमन हो रहा है। जब भारत पराधीनता की बेड़ियों से निकलने के लिए तड़पने लगा है। इस संग्राम में एक दिन हम विजयी होंगे। भारत में शांतिमय समर की भेरी बजा दी है। हंस भी मानसरोवर की शांति को छोड़कर अपनी नन्हीं सी चोंच में चुटकी भर मिट्टी लिए हुए आजादी की जंग में योग देने चला है।''पराधीनता, अंग्रजों की शोषक नीति, गरीबी, सम्पत्ति की असमानता, सामाजिक कुरीतियों और अंधविश्वासों का कुचक्र एवं कृषक मजदूर की विविध समस्याएं भारत भक्तों के स्वाभिमान को चुनौती दे रही थी। ऐसे में इन पत्रों ने ही देशवासियो में राष्ट्रीय चेतना का भाव जाग्रत किया। पराधीनता के विरुद्ध इन पत्रों की गर्जना के सम्बन्ध में निम्नलिखित उद्धरण दिए जा सकते हैं –

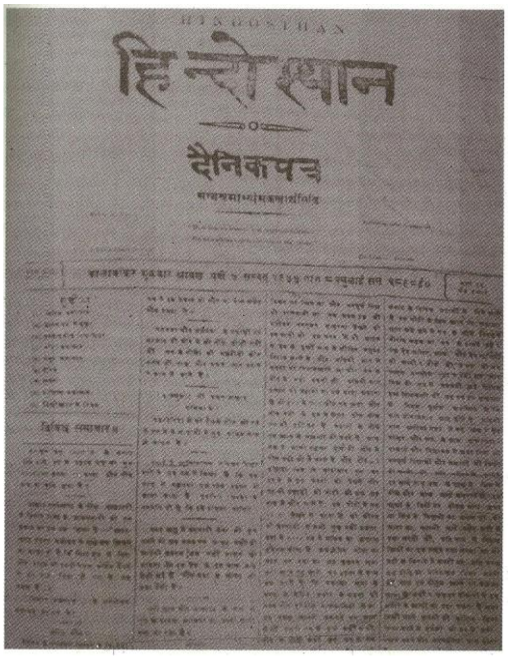
हिन्दोस्थान

दैनिकपत्र

''इन दिनों जब नादिरशाही अथवा रैण्डशाही मची हुई है उसका अधिक दिनों तक टिक सकना कभी सम्भव नहीं। लोग भले ही गरीब हों, किन्तु हम नहीं समझ सकते कि वे सदा अन्याय सहते रहेंगे। इसीलिए लार्ड सैण्डहर्स्ट साहब से हमारी यह प्रार्थना है कि वे लोगों में यह भाव न उत्पन्न होने दे कि वे प्लेग से मरने की अपेक्षा इस संकट को अधिक दुखदायी समझकर इससे उद्धार पाने के लिए नाजुक उपायों से काम लेने लगें।''[1]

'केसरी' ने अपनी एक सम्पादकीय में कहा कि – ''स्वातंत्र्य रूपी अमूल्य रत्न की प्राप्ति के लिए नरमेध–यज्ञ को छोड़कर अन्य समस्त लौकिक साधन व्यर्थ सिद्ध होते हैं। इस ऐतिहासिक सिद्धांत को मिथ्या कौन कर सकता है।'' 'नृसिंह' ने अपनी पहली ही सम्पादकीय में छापा कि – ''अब समय आ गया है कि समस्त भारतवासी विद्वान अथवा मूर्ख तन–मन–धन से स्वदेशोन्नति के लिए कमर कसकर खड़े हो जाएं। सर्वसाधारण को जगाने का काम विदेशी भाषा से कभी सम्पन्न नहीं हो सकता, उसके लिए ही राष्ट्रभाषा का प्रयोजन है।''[2] 'स्वदेशी' का उद्देश्य उसके मुखपृष्ठ पर ही प्रकाशित हुआ। स्वदेशी की इन पंक्तियों ने ततकालीन समाज में धूम मचा दी –

**मौत हुई तो वहाँ स्वर्ग का द्वार खुलेगा,**
**जीत हुई तो यहाँ यहीं का राज्य मिलेगा।**
**इस कारण कौन्तेय, उठो संदेह मिटाओ,**
**युद्ध करो फिर आग्नेय गांडीव उठाओ।।**

अंग्रेजों ने 1910 ई. में प्रेस के विरुद्ध एक कानून पारित किया जिस पर इण्डियन प्रेस

एसोसिएसन ने बम्बई में 24 जून, सन् 1916 ई. को एक सभा आयोजित की जिसमें बोलते हुए राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने पत्रों के प्रतिबन्ध के सम्बन्ध में कहा कि 'कहा गया था कि इस कानून का उपयोग केवल अपराधी पत्रकारों के विरुद्ध होगा, किन्तु 'न्यू इण्डिया' के मामले में अब तक जो घटित हुआ उससे कहा जा सकता है कि यह वचन एक भ्रम था। श्रीमति एनीबेसेंट पर किए गये आक्रमण से भी यह भ्रम दूर हो गया है। अब इस कानून के अंतर्गत प्रतिष्ठित पत्रकारों पर जुल्म किया जा रहा है। तब हम कैसे इससे सुरक्षित रह सकते हैं ?'[3]

अंग्रेजों के प्रतिबंधों एवं अभिव्यक्ति विरूद्ध कानूनों से पत्रकारिता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। बल्कि इसकी धार और भी तीक्ष्ण होती गई। माखन लाल चतुर्वेदी, गणेश शंकर विद्यार्थी, बाबूराव विष्णु पराड़कर, भूपेन्द्रनाथ दत्त आदि क्रांतिकारियों ने अपनी कलम के माध्यम से जनता का विश्वास हासिल किया। गदर में प्रकाशित हुआ कि ''क्रांति के साथियों तैयार हो जाओ। देश और विदेश में अपने प्रचार को संगठित करो। सेवा और बलिदान के नए व्रत लो। मुट्ठी भर अंग्रेजों ने जोर–जबरदस्ती से हमें गुलाम बना रखा है। हमें कुचल देना चाहते हैं। हिन्दुस्तान के नौजवान स्त्री–पुरुषों को उन्हें इसका उत्तर देना चाहिए।''[4]

## स्वातंत्र्योत्तर पत्रकारिता–

स्वातंत्र्योत्तर पत्रकारिता के सपने और यथार्थ स्वतंत्रता के पूर्व की पत्रकारिता से अलग थे। इस कारण पत्रकारिता के स्वरुप में परिवर्तन स्वाभाविक था। पत्रकारिता के क्षेत्र में एक नए युग का आरम्भ हुआ। आजादी की लड़ाई से ही जनता का भरोसा पत्रकारिता के साथ जुड़ा हुआ था। सन् 1952 ई. का पहला आम चुनाव और इसके बाद सत्ताधारी दल ने पत्रकारिता की नयी दिशा तय की। ''आजादी के बाद सक्रियता पत्रकारिता का जीवन–मंत्र बन गई थी। पत्रकार मात्र खबर पहुँचाने वाले न रहकर परिवर्तन के वाहक बन गये थे।........ उनके सम्मुख समय की ऐतिहासिक चुनौती थी, भविष्य की आशाएँ थीं–आवश्यकता थीं, उनमें 'साहस', 'प्रण' और प्रतिबद्धता की।''[5]

**स्वातंत्र्योत्तर पत्रकारिता के सपने और यथार्थ स्वतंत्रता के पूर्व की पत्रकारिता से अलग थे।**

स्वातंत्र्योत्तर पत्रकारिता युग में पत्रकारिता अपनी स्वायत्तता की ओर अग्रसर हुई। वर्षों से पाबंदियों में रहने वाली पत्रकारिता को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्राप्त हुई। भारत के पहले प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरु प्रेस की स्वतंत्रता के हिमायती थे। उन्होने अपने एक भाषण में कहा था कि– 'व्यापक अर्थों में समाचार–पत्रों की स्वतंत्रता केवल एक नारा नहीं है किन्तु जनतांत्रिक प्रक्रिया की एक आवश्यक विशेषता है – मैं दबे हुए या नियंत्रित समाचार–पत्रों की बजाय स्वतंत्रता के दुरुपयोग के सभी खतरों से युक्त पूर्ण स्वतंत्र समाचार–पत्र अधिक पसंद करूँगा।' इस मान्यता के पीछे पं. नेहरु प्रेस की भूमिका को राष्ट्र निर्माण के साथ जोड़ने के ईच्छा की थी। भारतीय जनमानस भी प्रेस के साथ इसी अभिलाषा से जुड़ा हुआ था। किन्तु समाचार–पत्रों की स्वतंत्रता एवं राष्ट्रसेवा की भावना के साथ–साथ धनोपार्जन की लालसा ने इस क्षेत्र में अनेक पूँजीपतियों को आकर्षित किया। भारतीय पत्रकारिता के संक्रमण का प्रारम्भ यहीं से होता है। पत्रकारिता के क्षेत्र में एकाधिकारी प्रवृतियों के आगमन के कारण सर्वाधिक खतरा छोटे पत्रकारों पर खड़ा दिखाई देता है। पत्रकारों की सेवा सुरक्षा के नाम पर कोई कानून नहीं था। पत्रकार पूँजीपति मालिकानों के अनुसार कार्य करने को विवश थे। पत्रकारों की समस्या और उनकी स्वायत्तता की समस्या को समझते हुए पं. नेहरु ने सन् 1955 ई. में श्रमजीवी पत्रकार कानून पारित कराया। इस कानून से पत्रकारों की सेवा सुरक्षा मजबूत हुई।

भारतीय लोकतंत्र की विकास–यात्रा भारत में हुए 1952, 1957, 1962, 1971 के चुनाव से और मजबूत हुई। इन चुनावों में कांग्रेस की मिली सफलता ने कांग्रेस के मिजाज को खराब कर दिया। पं. जवाहर लाल नेहरु और श्री लाल बहादुर शास्त्री के बाद श्रीमती इन्दिरा गांधी का सत्ताशीन हुईं। इन्दिरा जी के कार्य करने का अपना ढंग था। वह भारत की दृढ़ इच्छाशक्ति रखने वाली एक

निडर प्रधानमंत्री थीं। तत्कालीन समय में देश में अनेक समस्याएं खड़ी होने लगी थीं। सन् 1973 ई. का खद्यान्न संकट, भूमि हदबंदी कानून आदि के कारणों से भारत की जनशक्ति देश के नेतृत्व से नाराज होने लगी। भारतीय किसान भी इस नेतृत्व के खिलाफ उठ खड़े हुए। सन् 1977 ई. में आपातकाल की घोषणा कर दी गई। विपक्षी पार्टियों के नेतृत्व में सम्पूर्ण देश में बंद और आंदोलनों का सिलसिला प्रारम्भ हुआ। और देश ने इन्दिरा गांधी के शासन प्रणाली को इंकार कर दिया। हिन्दी पत्रकारिता ने इस आंदोलन एवं परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

''स्वतंत्रता के पश्चात हमारे देश में अब तक तीन बार आपातकाल की घोषणाएं की गई हैं। चीनी आक्रमण के समय 26 अक्टूबर, 1962 को बाह्य आक्रमण से भारत की सुरक्षा के खतरे को देखते हुए राष्ट्रपति ने यह घोषणा की थी। 10 जनवरी, 1968 तक यह आदेश बना रहा। सन् 1971 में पाकिस्तानी आक्रमण के समय 3 दिसम्बर को दूसरी बार आपातकाल की घोषणा की गई। तीसरी बार 26 जून, 1975 को आंतरिक अशांति से देश की सुरक्षा के संकट में होने के कारण आपातकाल की घोषणा की गई। सन् 1971 ई. में घोषित स्थिति पहले से ही प्रवर्तन में थी। इस घोषणा को 27 मार्च, 1971 ई. तथा 1975 ई. की घोषणा को 21 मार्च, 1977 ई. को वापस ले लिया गया।''[6] इन आपातकालों में तीसरा आपातकाल श्रीमति इन्दिरा गांधी की राजनीतिक महत्वाकांक्षा की परिणति था। इसके पीछे कोई ठोस सुरक्षा सम्बन्धी कारण नहीं था। इस आपातकाल के दौरान जनता के साथ–साथ पत्रकारिता की आवाज को भी दबाने की कोशिश की गई। इस आपातकाल के दौरान 253 पत्रकारों को गिरफ्तार किया गया। विदेशी पत्रकारों के भारत प्रवेश पर प्रतिबंध लगाया गया। परिणामतः जनता के साथ–साथ पत्रकारिता ने इसके विरुद्ध एक सशक्त आवाज निर्मित किया और इसकी परिणति यह हुई कि कभी किसी समय की लोकप्रिय इन्दिरा सरकार को भारी पराजय की सामना करना पड़ा।

आपातकाल के बाद हिन्दी पत्रकारिता जो आपातकाल के दौरान टूट रही थी, जो सरकारी विज्ञापनों के अभाव में आर्थिक संकटों का सामना करने लगी थी, अपने पुनर्निर्माण की कोशिशों में सन्नद्ध दिखाई देती है। भारी मात्रा में पूँजी पत्रकारिता के क्षेत्र में लगाई गई। अनेक औद्योगिक घरानों का आगमन इस क्षेत्र में हुआ। पत्रकारिता इलेक्ट्रानिक क्रांति की ओर उन्मुख हुई। मिशन से बाजार की ओर पत्रकारिता का गमन स्पष्ट तौर पर देखा जाने लगा।

लोकतंत्र में राजनीति एक महत्वपूर्ण नियामक शक्ति होती है। यह समाज एवं उससे जुड़े समस्त पहलुओं को प्रभावित करती है। राजनीति ने उस समय की पत्रकारिता को भी प्रभावित किया। नब्बे के दशक में सन् 1984 ई. में श्रीमति इन्दिरा गांधी की हत्या एवं श्री राजीव गांधी का प्रधानमंत्री के रुप में आगमन एक महत्वपूर्ण घटना है। राजीव जी के पास राजनीतिक अनुभवों की कमी थी। एक के बाद एक निर्णयों ने राजीव गांधी को राजनीति में उलझा दिया। बोफोर्स तोपों की खरीद में राजीव गांधी की कथित दलाली को लेकर श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह ने राजीव को सत्ताच्युत कर दिया। इस परिवर्तन में पत्रकारिता की अहम् भूमिका थी। सन् 1984 ई. का सिक्ख विरोधी दंगा, 1991 ई. का बाबरी विध्वंश, गोधरा कांड, अनेक जनांदोलनों एवं देश में समय–समय पर होने वाले आम चुनाव आदि के समय में हिन्दी पत्रकारिता ने सकारात्मक भूमिका का निर्वाह किया। अनेक प्रकार के स्टिंग आपरेशन से समय–समय पर पत्रकारिता ने राजनीति एवं समाज को सही दिशा देने का प्रयास किया है।

**संदर्भ–**


1. केसरी, 16 मार्च, 1897 ई. के अंक से
2. लोकमान्य तिलक और उनका युग– इन्द्र विद्यावाचस्पति, पृ. 23
3. हिन्दी पकारिता का वृहद इतिहास– डॉ. अर्जुन तिवारी, पृ. 193–94
4. गदर, 6 जनवरी, 1914 ई. के अंक से
5- डीमिस्टिफाइंग रियल्टी– रीना कश्यप (दी प्रेस कौंसिल आफ इण्डिया, वर्ष 20, अंक 1 में प्रकाशित), पृ. 59
6- प्रेस कानून और पत्रकारिता – संजीव



✉

**हिन्दी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग**

**9436594338**

**शोध–लेख**

डॉ. अश्विनीकुमार शुक्ल

# हिंदी पत्रकारिता में भाषा का स्वरूप

**विचारों के नए पर खुल सकते हैं**
**सुधावर्षणशील आकाश की**
**ओस से**
**कृतार्थ होने तक धुल सकते हैं**
**शब्द और अर्थ और विचार।**[1]

किसी भी भाषा में उपर्युक्त कविता की अंतिम पंक्ति में दिए गए *षब्द, अर्थ* और *विचार*, इन तीनों का ही गुंफन होता है। भाषा की सत्ता आकाष के समान ही अपरिमित है और यह अपरिमितता शब्द, अर्थ और विचार के संयोग से निर्मित होती है। अर्थ की प्रतीति शब्द से होती है। शब्दों से पद और वाक्यों की निर्मिति अर्थ को विस्तार देती है। वाक्यों के समूह विचारों की छटा का निर्माण करके महावाक्य अर्थात् प्रोक्ति बन जाते हैं। पत्रकारिता की भाषा में शब्द, अर्थ और विचार, इन तीनों की ही महत्त्वपूर्ण भूमिकाएँ हैं। पत्रकारिता भाषा का यथार्थपरक आयाम है, जो प्रायः अभिधात्मक होता है। प्रेषणीयता पत्रकारिता की भाषा का अनिवार्य गुण है। प्रेषणीयता पत्रकारिता की भाषा के अर्थ की सत्ता की संचालक है। चूँकि ''अर्थ की दृष्टि से परिपूर्ण वाक्यों की सुसंबद्ध इकाई का नाम प्रोक्ति है।''[2] इसीलिए भाषावैज्ञानिक दृष्टि से पत्रकारिता की भाषा एक प्रोक्ति है।

विश्व भर में लगभग 3500 भाषाओं/बोलियों का प्रयोग होता है, जिनमें से 500 से अधिक का प्रयोग लिखित रूप में भावों के आदान–प्रदान हेतु किया जाता है। संचार साधनों (लिखित और मौखिक दोनों ही) में दुनिया भर में व्यवहार में आने वाली 16 भाषाएँ हिंदी, चीनी, अंग्रेजी, जर्मन, इतालवी, फ्रांसीसी, जापानी, तमिल, तेलुगु, बंगला, मलय–बहासा (भाषा), रूसी, स्पेनी, पुर्तगाली, उर्दू तथा अरबी हैं। पत्रकारिता के समस्त रूपों में हिंदी का प्रयोग बहुतायत में हो रहा है। पराधीनता के कारण भारत में आधुनिक पत्रकारिता का आगमन बहुत देरी से हुआ। वैश्विक धरातल पर सन् 1665 ई. में ब्रिटेन में *ऑक्सफोर्ड गज़ट* के (सप्ताह में दो बार) प्रकाशन के साथ ही आधुनिक पत्रकारिता की नींव पड़ चुकी थी। *ऑक्सफोर्ड गज़ट* (संपादक : मुडमेन या मड्डीमैन) 24 सप्ताह बाद *लंदन गज़ट* बना, जब प्लेग के कहर के उपरांत राजकीय तंत्र ऑक्सफोर्ड से राजधानी लंदन लौट आया। *ऑक्सफोर्ड गज़ट* या *लंदन गज़ट* सत्ता का मुखपत्र था।

भारत में पत्रकारिता के बीज सन् 1768 ई. के आसपास पड़े थे। सन् 1768 ई. के सितंबर महीने में विलियम बोल्ट्स नामक डच मूल के एक व्यक्ति ने कलकत्ता के कौंसिल हाल एवं कुछ सार्वजनिक स्थानों में एक सूचना लगाई थी – ''आम जनता के लिए इस षहर में छापाखाने के अभाव में मिस्टर बोल्ट को यही एक तरीका जनता को सूचित करने के लिए ठीक लगता है। व्यापार के लिए इसका अभाव खलता है और समाज को सूचनाएँ पहुँचाना जरूरी है, जैसे कि हर ब्रिटिश नागरिक के लिए उनका प्राप्त होते रहना महत्त्वपूर्ण है।

बोल्ट किसी भी व्यक्ति या व्यक्ति समूह को जो छापाखाने का धंधा करना चाहते हैं, उन्हें प्रेस लगाने में सहयोग देने के लिए तैयार है। इस बीच वह लिखित रूप से आम लोगों को इस तरह सूचित करता रहेगा, जिसकी कि आवश्यकता प्रत्येक व्यक्ति अनुभव करता है। कोई भी व्यक्ति जो जिज्ञासु है वह मिस्टर बोल्ट के घर आकर इन सूचना–पत्रों को पढ़ सकता है या वह चाहे तो वहाँ से प्रतियाँ प्राप्त कर सकता है। कृपया वह इतना ध्यान अवष्य रखे कि प्रातः दस बजे से बारह बजे के बीच ही घर आए।''[3] बोल्ट्स की यह सक्रियता अंग्रेजों को नागवार गुजरी, फलस्वरूप उसे मद्रास पहुँचकर यूरोप के लिए रवाना कर दिया गया। बारह वर्ष बाद एक और विदेशी जेम्स आगस्टस हिकी सक्रिय हुआ एवं 29 जनवरी 1780 ई. को 'बंगाल गज़ट' या केलकट्टा जनरल एडवरटाइजर' नामक पत्र से भारतीय पत्रकारिता की शुरुआत की।

हिंदी पत्रकारिता की विधिवत शुरुआत 30 मई सन् 1826 ई. को प्रकाशित हुए ***उदन्त मार्तण्ड*** (साप्ताहिक) से हुई। इस पत्र की भाषा का स्वरूप आज के पत्रों की भाषा के स्वरूप से अलग है। शब्दावली, पद/वाक्य–संरचना और भाषा–सौष्ठव आदि के आधारों पर तब एवं अब की भाषा के स्वरूप में पर्याप्त अंतर हैं। कुछ उदाहरण देखिए – ''यह उदंत मार्तण्ड अब पहिले पहल जो आज तक किसी ने नहीं चलाया पर अंग्रेजी ओ पारसी ओ बंगले में जो समाचार का कागज छपता है उसका सुख उन् बोलियों को जान्ने ओ पढ़ने बालों को ही होता है। और सब लैग पराए सुख सुखी होते हैं जैंसे पराए धन धनी होना ओ अपनी रहते पराई आंख देखना वैसही जिस गुण में जिसको पैठ नहीं उसको उसके रस का स्वाद मिलना कठिन ही है और हिन्दुस्तानियों में बहुतेरे अैसे हैं कि पराई चाल देखकर अपनी यहतिक भुले हैं कि परायों में जो बुद्धिमन्त है वे.....।''[4] और ''एक यशी वकील वकालत का काम करते बुड्ढा होकर अपने दामाद को वह काम सौंप के आप सूचित हुआ। दामाद कई दिन वह काम करके एक दिन आया ओ प्रसन्न होकर बोला हे महाराज! आपने जो फलाने का पुराना ओ संगीन मोकद्दमा हमें सौंपा था सो आज फैसला हुआ यह सुनकर वकील पछता के बोला कि

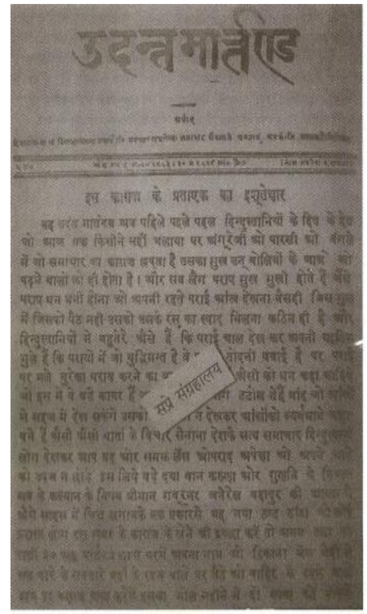
उदन्तमार्तण्ड

इस कागज के प्रकाशक का इश्तेहार

तुमने सत्यानाश किया उस मोकद्दमे से हमारे बाप बड़े थे तिस पीछे हमारे बाप मरती समय हमैं हाथ उठा के दे गए ओ हमने भी उसको बना रक्खा ओ अब तक भली भांति अपना दिन काटा ओ वही मोकद्दमा तुमको सौंप करके समझा था कि तुम भी अपने बेटे पोते परोतों तक पलोगे पर तुम थोड़े से दिनों में उसको खो बैठे।''[5]

इन दोनों उद्धरणों से स्पष्ट है कि *उदन्त मार्तण्ड* की भाषा पर हिंदी भाषा के तत्कालीन स्वरूप की पूरी छाप है। किसी भी संचार माध्यम की भाषा समाजभाषिकी से अनुप्रेरित होती है। जाहिर है कि आज की हिंदी भाषा की तुलना में *उदन्त मार्तण्ड* की भाषा विचित्र ही प्रतीत होगी। ध्यान देने की बात है कि हिंदी का गद्य उस समय आरंभिक स्थिति में था। इस संबंध में डॉ. अर्जुन तिवारी का कथन उल्लेखनीय है– ''*उदन्त मार्तण्ड* की भाषा विचित्र है। कहीं भी एकरूपता नहीं है। सरकारी विज्ञप्तियों, पब्लिक इस्तहारों, जहाज की समय–सारिणी, कलकत्ते के बाजारभाव संबंधी विवरणों में मिले–जुले शब्दों का जमघट है। अवधी, ब्रजभाषा, अंग्रेजी, उर्दू के साथ बंगला से प्रभावित हिंदी का रूप देखते ही बनता है। मुहावरों के प्रयोग से भाषा गतिशील हो गई है। गद्य की प्रारंभिक स्थिति वाले पत्र की क्रिया–पदावली भी ऊटपट है।''[6]

*समाचार सुधावर्षण* (सन् 1854 ई. से प्रकाशित) हिंदी पत्रकारिता का एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव है, क्योंकि द्विभाषी (हिंदी और बंगला) के उपरांत भी इसे पहला हिंदी दैनिक समाचारपत्र होने का गौरव प्राप्त है। बंगला से प्रभावित होने के कारण इसकी भाषा में अजीबोगरीब शब्दावली मिलती है। ''.....

बदनामियों का टोकरा सिर पर उठाके दिल लगाना जो है सो झक मारना और गू का खाना है।''[7] फिर भी *समाचारसुधावर्षण* (संपादक : श्यामसुंदर सेन) की भाषा परिमार्जित है। इसकी भाषा में ब्रजभाषा और उर्दू का समन्वय था।

सन् 1867 ई. का वर्ष हिंदी और भारतीय पत्रकारिता के लिए मील का पत्थर है। इस समय जहाँ एक ओर नए–नए पत्र–पत्रिकाओं का आविर्भाव हो रहा था, वहीं विदेशी सत्ता बौखलाहट में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता हरने के लिए नए–नए हथकंडे अपना रही थी, क्योंकि सन् 1857 ई. के अजीमुल्ला खाँ के *पयामे आजादी* की आग उगलती भाषा के शोले अंग्रेज भूल नहीं पाए थे। ऐसे ही समय में भारतेंदु हरिश्चंद्र ने *कविवचनसुधा* (मासिक) के माध्यम से पत्रकारिता के क्षेत्र में एक शीतल झोंके के समान पदार्पण किया था और अपनी भाषा से एक ऐसी आग भारतीय जनमानस में लगाई थी जो, अंग्रेजों को तो शीतल करती थी, किंतु भारतीयों को गुलामी के दंष की आँच बराबर देती रहती थी। *कविवचनसुधा* (15 अगस्त 1867 ई. से प्रकाशित) के उद्देश्य से इसकी भाषा की बानगी मिल जाती है – ''खल गन सों सज्जन दुखी मति होहिं, हरिपद मति रहै।/अपधर्म छूटै, सत्त्व निज भारत गहै, कर दुःख बहै।/बुध तजहिं मत्सर, नारि नर सम होहिं, जग आनन्द लहै।/तजि ग्राम कविता, सुकविजन की अमृतवानी सब कहै।''[8] बोलचाल की सपाट, सरल और साधारण भाषा से युक्त *कविवचनसुधा* में भावप्रवणता सहज ढंग से बहती थी, फलतः यह

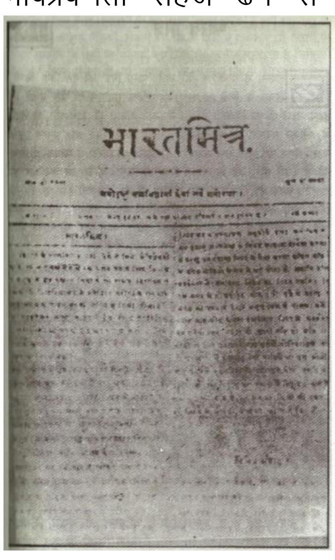
भारतमित्र.

पत्रिका लोकप्रिय हुई तथा पहले मासिक से पाक्षिक और फिर पाक्षिक से साप्ताहिक हो गई।

*भारतमित्र* 17 मई 1878 ई. से पाक्षिक (दसवें अंक से साप्ताहिक व 1897 ई. से दैनिक) के रूप में छोटूलाल मिश्र के आदि संपादन में कलकत्ता से षुरू हुआ। *हिन्दोस्थान* के प्रकाशन का आरंभ रामपाल सिंह (कालाकांकर रियासत के तत्कालीन राजा) ने पहले सन् 1883 ई. में इंग्लैंड से अंग्रेजी–हिंदी में एवं बाद में 1885 ई. से कालाकांकर (उत्तरप्रदेश के प्रतापगढ़ जनपद में स्थित) से प्रथम समग्र हिंदी दैनिक के रूप किया। इन दोनों पत्रों ने हिंदी पत्रकारिता और भाषा को नई ऊँचाइयाँ प्रदान कीं।

हिंदी पत्रकारिता की अभूतपूर्व प्रगति और फलस्वरूप हिंदी व्याकरण के निरंतर परिमार्जन ने हिंदी भाषा के स्वरूप के स्थिरीकरण, मानकीकरण एवं परिष्करण पर बल दिया और लोकप्रियता–प्रयोजनीयता के विस्तार में पत्रकारिता की मुख्य भूमिका निभाई। इसी कारण से हिंदी साहित्य का उन्नयन, प्रचार–प्रसार और इसकी अनेक विधाओं का विकास–विस्तार भी हुआ। भारतेंदु हरिष्चंद्र द्वारा संपादित विभिन्न पत्र–पत्रिकाएँ और *सरस्वती* का योगदान विस्मृत नहीं किया जा सकता। *सरस्वती* और *सुदर्शन* दोनों का प्रकाशन मासिक के रूप में काशी से जनवरी 1900 ई. से

सरस्वती

शुरू हुआ। *सरस्वती* बीसवीं शताब्दी की सबसे महत्त्वपूर्ण पत्रिका रही है, जिसने न केवल हिंदी भाषा के स्वरूप, व्याकरण और शब्द–भंडार को समृद्ध किया, अपितु साहित्य एवं साहित्यकारों का भी विकास किया तथा निराला जैसे जिज्ञासुओं को हिंदी भी सिखाई। *सरस्वती* की भाषा का एक उदाहरण द्रष्टव्य है – ''परम कारुणिक सर्वशक्तिमान जगदीश्वर की अशेष अनुकंपा से ऐसा अनुपम अवसर आ कर प्राप्त हुआ है कि आज हम लोग हिंदी भाषा के रसिक जनों की सेवा में नये उत्साह से उत्साहित हो एक नवीन उपहार लेकर उपस्थित हुए हैं जिसका नाम 'सरस्वती' है। भरत मुनि के इस महावाक्यानुसार कि 'सरस्वती श्रुति

## 'बौर लगी अमराई देती आहट फागुन की...'

कविता पाठ करते डा.रामगोपाल गुप्ता।

बांदा। साहित्यिक, सांस्कृतिक संस्था 'संकल्प क्रम' की गोष्ठी में रचनाकारों ने सामयिक मुद्दों पर काव्य पाठ किया। अज्ञेय और भवानी प्रसाद मिश्र के व्यक्तित्व और कृतित्व पर चर्चा हुई।

पंडित जेएन महाविद्यालय प्राचार्य डा.नंदलाल शुक्ल के आवास में रविवार को आयोजित गोष्ठी की शुरुआत अतुल शुक्ल ने सरस्वती वंदना से की। डा.अश्वनी कुमार शुक्ल ने अज्ञेय को साहित्य का महान पुरोधा बताया। उन्होंने भवानी प्रसाद मिश्र की 'गीत फरोश' और 'लाओ अपना हाथ' काव्य पंक्तियां प्रस्तुत कीं। जेएन कालेज हिंदी के पूर्व विभागाध्यक्ष डा.रामगोपाल गुप्त ने भवानी प्रसाद मिश्र को सपाट शब्दों में समाज के सामयिक मुद्दों और स्वार्थी कवियों पर व्यंग्य करने वाला लोक चेतना का कवि बताया। प्राचार्य डा.नंदलाल शुक्ल ने 'बौर लगी अमराई देती आहट फागुन की' कविता पढ़ी। डा.बाबूलाल शर्मा 'धीरज' ने 'पर हम तुलसी नहीं बन पाए' पढ़ी। डा.देवलाल मौर्य ने भवानी प्रसाद मिश्र को गांधीवादी परंपरा का श्रेष्ठ संवाहक बताया। डा.उमाकांत अग्निहोत्री ने 'आह से कवि की निकलकर पीर कविता बन गई' पंक्तियां प्रस्तुत कीं। मुख्य अतिथि चंद्रशेखर शुक्ल (फतेहपुर) ने फागुन के फाग और विशिष्ट अतिथि डा.चंद्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित' ने प्रकृति सौंदर्य और मुक्तक रचनाएं प्रस्तुत कीं। प्रवक्ता डा.राकेश राणा ने सामाजिक विसंगतियों पर कटाक्ष किया। महोबा के शिवनाथ त्रिपाठी 'शंख' ने महंगाई और पर्यावरण प्रदूषण पर काव्य पाठ किया। नीरज पांडेय ने नशा मुक्ति का आह्वान किया। धर्मेंद्र सिंह पटेल, सुधीर खरे 'कमल', रमेशचंद्र दुबे, डा.कृष्णगोपाल गौतम, जवाहर लाल 'जलज', भगवानदीन गुप्त, हासि जमा ने रचनाएं पढ़ीं। अध्यक्षता प्रो.बीडी मिश्र ने की। बृजराज सिंह परिहार ने आभार जताया।

महती न हीयताम्' अर्थात् सरस्वती ऐसी श्रुति है कि यदि हिंदी के सच्चे सहायक और उससे सच्ची सहानुभूति रखने वाले सहृदय हितैषियों ने इसे समुचित आदर और अनुरागपूर्वक ग्रहण कर यथोचित आश्रय दिया तो अवश्यमेव यह दीर्घजीवनी होकर निज कर्त्तव्य पालन से हिंदी की समुज्ज्वल कीर्ति को अचल और दिगंतव्यापिनी तथा स्थायी करने में समर्थ होगी।''[9] कहना न होगा कि इस उद्धरण की भाषा अधिक परिष्कृत और प्रांजल है। *सरस्वती* का उद्देश्य बहुत व्यापक था, इसीलिए यह भाषा की संपूर्ण पत्रिका बन सकी। उद्धरण में उद्धृत भरत मुनि की प्रोक्ति ने कमाल दिखाया और हिंदी का नया स्वर्ण युग 'छायावाद' अपनी इंद्रधनुषी छटाओं के अनेक रंग बिखेर गया। सन् 1900 से लेकर अब तक हिंदी के हजारों पत्रादि छप चुके हैं और उनमें से अनेक आज भी छप रहे है। इस प्रकार हिंदी साहित्य एवं भाषा की प्रगति उत्तरोत्तर हो रही है। यह भी सच है कि किसी भी भाषा का स्वरूप अंतिम नहीं होता है, इसीलिए परिवर्तन अवश्यंभावी है। विराम चिह्नों के प्रयोग से भाषा की अर्थवत्ता बढ़ी है।

हिंदी पत्र–पत्रिकाओं की भाषा में पारदर्शिता, तार्किकता, कसावट, नवीनता और विचारगुंफन जैसी विशेषताएँ विशेष रूप से विचारणीय हैं। शब्दावली में बढ़ोत्तरी तो हुई ही, षब्दों की अर्थवत्ता भी बढ़ी। कम शब्दों में अधिक कह देने की प्रवृत्ति में वृद्धि हुई। हिंदी भाषा की व्यापकता ने इसका प्रसार संसार में तो किया ही, इसमें समरसता, प्रांजलता, गांभीर्य, अभिव्यक्ति–सामर्थ्य, लाक्षणिकता–व्यंजनात्मकता और भाव–प्रवणता आदि के गुणों का समावेष कर दिया। परिणामतः भावोद्रेक की तरलता एवं चिंतन ने ज्ञान के आलोक से समस्त संसार को चकित कर दिया। पत्रकारिता के माध्यम से गद्य की अनेक नई विधाओं का विकास और प्रसार तथा पुरानी विधाओं का पुनर्नवीनीकरण हुआ। पांडित्य और गहन चिंतन ने भाषा को नई गति व दिशा दी। हिंदी भाषा में मधुरता के साथ–साथ सरलता–सहजता के अद्भुत समन्वय ने भावप्रवणता को निखारा। स्वाधीनता हेतु संघर्ष ने भाषा में दृढ़ता, अन्याय के प्रति आक्रोश, वैचारिक सत्यता, यथार्थपरक चेतना और प्रभावशाली प्रज्ञा को जन्म दिया तो, पराधीनता से मुक्ति ने सहृदयता, उदारता और मानवीय करुणा को पंख लगा दिए।

बीसवीं शताब्दी न केवल मुद्रित पत्रकारिता के नाम है, बल्कि विज्ञान व तकनीकों की सहायता से इलेक्ट्रॉनिक संचार माध्यमों के अभूतपूर्व विकास के लिए भी सदैव याद रखी जाएगी। आज मुद्रित माध्यम में कार्य करते हुए कंप्यूटर की तकनीक के बल पर आप वर्तमान पत्र–पत्रिकाओं की भाषा का उदाहरण बिना टंकित किए भी चित्र के रूप में दे सकते हैं। तकनीक का एक नमूना प्रस्तुत है –

इस चित्र में दी गई सुपाठ्य सामग्री समकालीन समाचारपत्रों की भाषा की बनावट–बुनावट का उत्कृष्ट उदाहरण है। 08 मार्च 2010 को प्रकाशित हुए *अमरउजाला* के कानपुर संस्करण की इस रिपोर्ट से भाषा और संचार माध्यमों के समक्ष व्याप्त चुनौतियों के बारे में भी पता चलता है। उदाहरणार्थ कई शब्द और नाम अशुद्ध रूप में छापे गए हैं। वस्तुतः भाषा की सरलता और क्षमता केवल शब्दों पर ही नहीं निर्भर है; वाक्यों की रचना की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण होती है।

भाषाविज्ञान और तकनीक के विकास ने समन्वित स्तर पर अनुवाद की जगह बनाई है। अनुवाद के माध्यम से न केवल भाषाएँ समृद्ध हुई हैं, अपितु मानवीय संप्रेषणीयता के साथ–साथ मानवता का भी विकास हुआ है। तकनीक ने केवल जनसंचार माध्यमों की ही क्रांति प्रस्तुत नहीं की है, वरन् भाषा और लिपि के धरातल पर भी व्यापक परिवर्तन किए हैं। धीरे–धीरे भाषा का भेद पार्श्व में जा रहा है और पत्रकारिता के विभिन्न प्रकारों एवं उनकी भाषावली के सौजन्य से प्रेषणीयता सर्वोपरि होती जा रही है। रोमन लिपि में हिंदी का लिखा जाना और विदेशी भाषाओं के शब्दों का हिंदी में ज्यों का त्यों लेकर देवनागरी लिपि में लिखा जाना उक्त परिवर्तन की कड़ी के रूप में दर्शनीय हैं। बाजारीकरण, वैश्वीकरण और उदारीकरण इत्यादि ने भाषा को एक हथियार बना दिया है। भारत की आर्थिक प्रगति ने अमेरिका जैसे व्यावसायिक देषों को हिंदीवादी बना दिया है। यह हिंदी भाषा की ही ताकत है कि विश्व के सबसे शक्तिशाली राष्ट्रपति को हिंदी सीखने और बोलने के लिए बाध्य होना पड़ा है। अनुवाद की प्रक्रिया ने बिना भाषा को जाने ही उसका पढ़ना आसान कर दिया है। अनुवाद की विकसित तकनीक, लिप्यंतरण की तकनीक और टेलीप्रिंटर आदि ने हिंदी के अलावा दुनिया की तमाम भाषाओं को पत्रकारिता के समस्त माध्यमों में प्रयोग हेतु अनोखे संसाधन उपलब्ध करवा दिए हैं। विभिन्न तकनीकों के माध्यम से भाषा का स्वरूप विकृत भी हुआ है। उदाहरण के लिए सचलभाष अर्थात् मोबाइल और ई–मेल द्वारा भेजे जाने वाले संदेशों आदि में भाषा एवं शब्दों को तोड़–मरोड़ अथवा संक्षिप्त करके कुछ का कुछ बना दिया जाता है। वृहद अर्थों में मोबाइल और ई–मेल पत्रकारिता के साधनों के रूप में देखे जाते हैं। इंटरनेट में ब्लॉग की दुनिया ने पत्रकारिता का एक और रूप संसार के सामने ला खड़ा किया है, जो हिंदी पत्रकारिता के भाषिक स्वरूप को एक और नया आयाम प्रदान करती है। यूनिकोड के माध्यम से अनेक भाषाओं को मनचाही भाषा में पढ़ा जा सकता है और स्वयं की भाषा के सहारे अनजानी भाषा में लिखा भी जा सकता है। इस संदर्भ में 'कोड मिक्सिंग' और 'कोड स्विचिंग' की भी चर्चा की जा सकती है।

विज्ञापन पत्रकारिता की जीवनरेखा है और इसीलिए यह उसका अभिन्न अंग भी है। विज्ञापनों की भाषा ने पत्रकारिता के सभी रूपों में अजीबोगरीब स्वरूप का ताना–बाना बना लिया है। रेडियो, दूरदर्शन, फिल्म, इंटरनेट और मुद्रित पत्रकारिता में भी धड़ल्ले से हिंग्रेजी (देवनागरी लिपि) व हिंग्लिश (रोमन लिपि), जिन्हें हिंदी व अंग्रेजी मिश्रित भाषाएँ कहा जा सकता है, का प्रयोग किया जा रहा है और इस प्रकार हिंदी पत्रकारिता की भाषा का स्वरूप एक संक्रमण के दौर से भी गुजर रहा है।

कुल मिलाकर कहा जाए तो, पत्रकारिता की भाषा ने यथार्थ जीवन की अनुभूतियों में काव्यमय सौंदर्य भर दिया। लोक से गृहीत शब्दावली ने प्रकाश में आने के साथ ही नए मुहावरों, नई लोकोक्तियों और नई सूक्तियों ने हिंदी भाषा को अभूतपूर्व समृद्धि एवं लोकप्रियता प्रदान की। उदारीकरण, वैश्वीकरण और विज्ञान–तकनीक के तीव्रतम बदलाव के इस दौर में हिंदी पत्रकारिता में भाषा का स्वरूप एक नए अवतार में प्रकट होने की कोशिश कर रहा है तथा अनेक चुनौतियों के बावजूद प्रेषणीयता के बल पर सारी दुनिया का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने में सफल हुआ है।

**संदर्भ —**


1. भवानीप्रसाद मिश्र : शरीर कविता फसलें और फूल, 'अंजुलि–भर शब्द', पृ. 10,
2. डॉ. रामचंद्र वर्मा : भाषा और भाषाविज्ञान (लेखक : डॉ. नरेश मिश्र), पृ. 53,
3. डॉ. वेदप्रताप वैदिक : 'हिंदी पत्रकारिता : विविध आयाम', भाग–1, पृ. 28,
4. 'उदन्त मार्तण्ड' के दर्शाए गए चित्र का अंश,
5. 'उदन्त मार्तण्ड' : आषाढ़ बदी 5 संवत् 1883 विक्रमी,
6. डॉ. अर्जुन तिवारी : हिंदी पत्रकारिता का बृहद् इतिहास, पृ. 89,
7. समाचारसुधावर्षण : आश्विन बदी 2 संवत् 1912 विक्रमी,
8. हिंदी पत्रकारिता का बृहद् इतिहास (लेखक : डॉ. अर्जुन तिवारी), पृ. 104,
9. सरस्वती, भाग 1, संख्या 1,जनवरी 1900 ई.।



**हिंदी विभाग, पंडित जवाहरलाल नेहरू स्नातकोत्तर महाविद्यालय,**
**बाँदा–210001 (उप्र)**
**9415171833**

शोध–लेख

डॉ. संगीता देवी

# डॉ. वेद प्रकाश शर्मा 'अभिताभ' के कथा–साहित्य में 'नारी' का उभरता स्वर

**नारी** शब्द अत्यन्त संवेदनशील है। प्रत्येक युग में युग का प्रतिनिधित्व करने के बावजूद सम्पूर्णता के साथ नारी उचित सम्मान नहीं पा सकी। नारी संगत विविध विसंगतियां और विडम्बनाये नहीं है। प्रत्युत प्रत्येक युग में नारी अपने आप में अपनी अस्मिता को स्थापित करने के लिए विपरीत समस्याओं से जुझती रही है। नारी संचेतना के विषय में गोस्वामी तुलसीदास जी ने जिस पीडा की अनुभूति की; उसे माता पार्वती के विवाह के प्रसंग में उनकी मां हिमालय की पत्नी मैना द्वारा इस प्रकार कहलाया– ''कत विधि स्वेसि नारी जग माही।/पराधीन सपनेहु सुख नाही।''[1] नारी और पुरुष दोनों अर्द्धवृत्त हैं। नारी का स्वरूप कोमल है और पुरूष का स्वरूप समर्थ। नारी और पुरुष मिलकर सृष्टि को अपना अवदान देते हैं, उसमें दोनों की भागीदारी की मा़त्रा समान होती है। आज का युगीन बोध लेखन समग्र रूप से नारी स्वतंत्रता नारी विमर्श और नारी–उत्थान जैसे बिन्दुओं को समस्याओं के रूप में प्रस्तुत कर विभिन्न प्रकार के पारस्परिक विरोधी विचारो को प्रस्तुत करता है। रचनाओं के कथानकों के माध्यम से देखना यह है कि वेद प्रकाश जी का रचनाधर्म नारी के अधिकार संगत बिन्दुओं को उभारने के साथ साथ उसके पुनीत कर्तव्यों और निष्ठा सम्पन्न अभीष्ट व्यवहार के प्रति भी समान रूप से सजग है या नहीं ?

नारी की लज्जाशीलता; उसका सतीत्व और उसकी कोतलता तथा व्यवहार में सदाषमता ही उसका आभूषण है। यही श्रंगार है इन गुणों का हास होने पर सुधी चिन्तकों की चिन्ता का बढ़ना स्वाभाविक है। आज के परिवेश में इस चिन्ता को यत्र–तत्र लेखक व्यक्त करते हैं, यथा–

''चाहा जीता रहूं युगों तक यशधी बन विहरूं,
किंतु विवशता धक्के देकर आगे निकल गयी।''
इनको देखा, उनको देखा, अपने को तौला;
कदाचरण के घर शहनाई सुनकर मन खौला।
क्या सतीत्व को लात मार कुलटा का वरण करूं।
मन जब तक समझाता तब तक प्रज्ञा सिहर गयी।[2]

भारत जो सतियों का देश था; अब सतीत्व संरक्षण के राजनीतिक ''निषेध के कारण कुलटाओं का देश होता जा रहा है, यह विडम्बना है। अभिताभ जी ने अपनी रचनाओं में नारी के शुद्ध स्वरूप को बनाये रखने के लिए इस तरह की अभिव्यक्ति की है।

मुझे मिला है, बराबरी का अधिकार
पढ़ाई–लिखाई, वोट और नौकरी का अधिकार
पति के कंधे से कंधा मिलाकर, चलने का अधिकार

सबकुछ ठीक है, अच्छा है
बस कभी–कभी स्टोव में, हवा अधिक भर जाती है
कमबख्त आग है कि साड़ी में लग जाती है
सास–ससुर को खबर तक नहीं होती
और उनकी लाडली बहू, झुलसकर मर जाती है।''[3]

प्रस्तुत रचना सीधे–सपाट शब्दों में पढ़ी–लिखी बहू की स्टोव के फट जाने से लगी आग में जलकर होने वाली मृत्यु का आभास देती है। यद्यपि नारी के संदर्भो में विपुल साहित्यकारो ने अपनी लेखनी का संधान किया है। यही से नारी मुक्ति; नारी विमर्श; दलित नारी; नारी भोग्या आधुनिक नारी आदि नाना प्रकार के शीर्षकों में नारी के इतिवृत्त को लेखकों ने कविता; कहानी; उपन्यास; आदि के माध्यम से प्रस्तुत किया है। फिर भी नारी के प्रति वांछित संवेदना को पूर्णता नहीं मिल पायी; यहीं कारण है कि कवियों और लेखकों के लिए नारी के संन्दर्भ में अब तक निरन्तर लेखकीय प्रतीक्षा में बने हुए है।

यहाँ मैं पुरुष और नारी को उसकी भिन्नता के आधार पर कारणगत विशेषताओं पर प्रकाश डालना समीचीन समझती हूँ। पुरुष और नारी के बीच बनते बिगडते सम्बन्धों को लेकर लेखकों ने दिशाहीनता ही गृहण की है और इनके स्वरूपों को बिना गम्भीरता से समझे हुये एक दूसरे पर दोषारोपण किया है, जबकि पुरूष और नारी के बीच मतभेद के कारण यह नहीं है जो अब तक पुरुष मानसिकताओं पुरुष–प्रधान समाज नारी भोग्या कहकर नारी की दयनीय स्थिति की थोथी प्रशंसा अर्जित करने के लिए लेखक लिखते रहे हैं। मैं स्वयं नारी हूँ; मेरी मां नारी है, मेरी नानी भी नारी है; और पीढ़ियों से घरेलू पारिवारिक सदस्यों के रहन–सहन व उनके व्यवहार के विषय में चली आ रही लघुकथाएं सुनती आ रही हूँ। मुझे उपरोक्त विसंगतियां कभी भी उपयुक्त नहीं जान पड़ी। नारी भोग्या नहीं, प्रत्युत सृष्टि की संवाहक है, सनातन से संवाहक रही है। नारी कभी भी दयनीय नहीं रही; वह स्वयं उदारचेता रही अपने सुखों का उत्सर्ग करके शिशुओं का पोषण करती रही है और सृष्टि के सातत्व को बनाये रही। नारी रूपा प्रकृति सृष्टि के अर्द्धवृत्त की अंश धर्मापूरक है, नारी के अभाव में पुरुष अधूरा है। नारी में सहज कोमलता के साथ पुरुषत्व भी होता है, जबकि पुरुष में अजेय पौरूष तो होता ही है पर संवेध नारीत्व का अभाव होता है। यही कारण है कि जब भी पुरूष संकटग्रस्त हुआ, उसे शक्ति का मुखापेक्षी होना पड़ा। नारी में आभ्यन्तरिक गहराई वैचारिक ऊँचाई भी होती है, जिसे नाप पाना सामान्य बौद्धिक स्तर पर यदि असम्भव नही तो दुष्कर अवश्य है। नारी पुरूष की पुनीत कामना का केन्द्र क्रिया की प्रतिक्रिया और जीवन के यथार्थ का व्याकरण होती है। अब हम आयें वर्तमान में लिखे जा रहे या लिखे गये नारी सन्दभों के विश्लेषण में– अभिताभ जी की कहानी 'दूसरी शहादत' में नायिका किंकर्तव्यमूढ़ के रूप में प्रस्तुत होती है। अतीत के प्रति उसके अंध मोह टूट जाते है; शहीद की पत्नी का सम्मान पूर्ण रूप समाज में जिस प्रकार निर्माचित हुआ है वह कुछ नारी की अस्मिता को गहिमा मण्डित करता है। यह विचारणीय है कि नारी के दोनों पक्षों में कौन सा पक्ष अधिक सबल है किंकर्तव्यमूढ़ नारी का स्वभाव न ही उसकी नियति है, न ही परिवेश और परिस्थिति जन्य हो सकती है। ऐसी स्थिति में लेखकों की अभिव्यक्ति विश्लेषणात्मक न होकर सपाट बयानी में बदल जाती है तथा सुनीता को समाज में महिमा–मंडित रूप देकर प्रस्तुत किया जाना लेखक की अंतश्चेतना में नारी की स्वाभाविक प्रतिभा के अनुरूप है।[4]

वर्तमान में नारी के सामने समाज के बदलते हुए परिवेश और राजनीतिक प्रदूषण ने जो चुनौतियां और परीक्षाएं उपस्थित कर दी हैं, उनके विषय में अभिताभ जी का दृष्टिकोण बिल्कुल स्पष्ट है। नारी अनन्त वेदना और अनन्त परीक्षाओं को पार करते हुए गुजरती है। यह तथ्य 'कितनी अग्निपरीक्षाएं' संकलन में यथार्थता का संवाहक बनकर उभरा है–

''वह किताबें पढ़ती है,
लेकिन यह नहीं बांच पाती
कि उसके हिस्से में कितनी यातनाएं हैं,
तवे से लेकर तन्दूर तक
कितनी अनागिनत व्यथाएं हैं
कितनी चीरहरण कितनी अग्निपरीक्षाएं हैं
यह परीक्षा तो भूमिका भर है,
आने वाली परीक्षाओं की!
क्या उन परीक्षाओं के लिए भी
कुछ पढ़ रही है लड़की।''[5]

आज के परिवेश में नारी संवर्ग में पुरातनता के प्रति विद्रोह और आधुनिकता का आग्रह तथा इन दोनों के टकराव से उत्पन्न संहर्षो का प्रभाव बडी सहजता से पनपा है और इस संहर्ष को विभिन्न पात्रों के साथ भिन्न कथा–वस्तुओं का सृजन कर डॉ. अभिताभ ने शिल्पगत कौशल से सजीव चित्रण किया है। यह है डॉ. अमिताभ की रचनाधर्मिता के प्रति सत्यनिष्ठा के साथ समर्पण और अभिव्यक्ति की ईमानदारी।

संदर्भ–


1. रामचरित मानस– गोस्वामी तुलसीदास
2. साक्षात्कार– डॉ. चन्द्र कुमार पाण्डेय
3. बसन्त के इन्तजार– डॉ. वेद प्रकाश अमिताभ
4. दूसरी सहादत में नारी का रूप– डॉ. वेद प्रकाश शर्मा 'अमिताभ'
5. कितनी अग्निपरीक्षाएं– डॉ. वेद प्रकाश शर्मा 'अमिताभ'



**प्रवक्ता (हिंदी), राजकीय बालिका इण्टर कालेज, फतेहपुर**

शोध–लेख

डॉ. प्रीती यादव

# 'कस्तूरी कुण्डल बसै' में अभिव्यक्त स्त्री–जीवन

**एक** माँ और बेटी की कहानी। ऐसी माँ और बेटी की कहानी, जिन्होंने जीवन–पर्यन्त कठिनतम् समस्याओं का सामना करते हुए, समाज के बंधे–बंधाये ढ़र्रे को मानने से इनकार कर दिया। एक ऐसी माँ और बेटी जिन्होंने सामाजिक कुरीतियों एवं बंधे–बंधाये नियमों से बाहर निकल स्वयं के स्वच्छन्द, किंतु करने हेतु सामाजिक विरोधों का हटकर सामना किया। उपन्यास का आधार है बुन्देलखण्ड का ग्रामीण जीवन और सामाजिक विद्रूपतायें। मैत्रेयी जी ने माँ–बेटी के जीवन के ठोस यथार्थ को अपने खट्टे–मीठे अनुभवों के द्वारा समेटा है। ये उनके (माँ–बेटी) आपसी लगाव–दुराव की संघर्षपूर्ण गाथा है। जब–जब माँ कस्तूरी ने बेटी मैत्रेयी का समाज से पृथक संस्कार देकर परिष्कृत करना चाहा, तब–तब मैत्रेयी ने बेबाक होकर अपनी गहनतम् जिजीविषा और पीड़ा की परतों को परत दर परत उधेड़ा है। पति खो चुकी स्त्री को समाज में क्या कुछ झेलना पड़ता है। इसकी गहनतम् पड़ताल की गयी है, साथ ही साथ सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक आदि समस्याओं के साथ–साथ समाज में कोढ़ के समान फैली दहेज–प्रथा की समस्या का चित्रण भी यथा समय किया गया है। बदहाल माँ तमाम संकट के बावजूद बेटी को किस तरह जीवन में हार न मानने का पाठ देती है।यह उपन्यास का खास तत्व है। यहीं एक माँ आधुनिकता, यथार्थता व क्रांतिकारिता में अपनी बेटी से कहीं आगे दिखायी देती है। उसके साहस तथा विचारों के समक्ष मैत्रेयी एक साधारण किंतु सामाजिक विद्रूपताओं की शिकार लड़की के रूप में हमारे समक्ष आती हैं। जबकि माँ सामाजिक विद्रूपताओं को अपना शिकार बनाती है। यहीं माँ और बेटी के स्वरूप में भिन्नता प्रकट हो जाती है। संपूर्ण उपन्यास का सर्वाधिक रोचक तथ्य माँ–बेटी सामाजिक बंधनों में बंधकर रहना नहीं चाहतीं, फिर भी एक–दूसरे के विचारों से पूर्णतया असहमत दिखायी देती हैं। दोनों निजी तथा वर्तमान जीवन की पीड़ा से त्रस्त तथा समाज से मिले कटु अनुभवों की शिकार होने पर भी एक–दूसरे के विचारों व मान्यताओं से सरोकार नहीं रखतीं।

प्रस्तुत उपन्यास में वैसे तो चार पीढियों का विवरण है। परंतु मूल रूप से दो पीढ़ियों का चित्रण है। कस्तूरी और मैत्रेयी नाम की माँ और बेटी के संघर्ष की दास्तान को रुचिकर ढंग से समेटा गया है। कस्तूरी जो मैत्रेयी की माँ हैं, आजीवन कटु अनुभवों व कष्टों को झेलकर अपना एक मुकाम हासिल करती है। माँ ने जो भोगा वह चाहती है कि बेटी उन दुःखों से दूर रहे। माँ बेटी को एक ऐसे रूप में देखना चाहती है, जो स्वयं सशक्त एवं दृढ़–चरित्र तो हो ही, साथ ही सामाजिक विद्रूपताओं की शिकार महिलाओं का संबल बन उन्हें भी एक नयी दिशा प्रदान करने में सहायक हो। किंतु मैत्रेयी एक साधारण, कोमल भावनाओं में डूबी रहने वाली लड़की हैं। उसके सपने माँ के सपने से सर्वथा पृथक सपने हैं। एक आम लड़की के सपने। बस बेटी की यही सोच माँ को उसका विरोधी बना देती है। माँ नहीं चाहती कि बेटी उन समस्त साधारण स्त्रियों की भाँति वैवाहिक जीवन की चक्की में पिसे। जिसमें स्त्री मात्र एक भोग्या वस्तु के रूप में समझी जाती है। यानि कि पति–रूपी पुरुष

कामेच्छा की पूर्ति करना, ढेर सारे बच्चे पैदा करना, उनका लालन–पालन और चूल्हा–चौका करना आदि।

दोनों के ऐसे विरोधी विचारों के पीछे प्रबल तर्क व अनुभव कार्य करते हैं, जहाँ माँ ने अपने विवाह के नाम पर उसका तीव्र विरोध किया था, फिर भी विवाह के नाम पर उसकी माँ और भाई ने आठ रुपये के कंगन के बदले उसे बेंच दिया था और जिस अय्याश पति के रहते उसे क्षण–भर सुख व सहयोग न प्राप्त हुआ हो, उसी स्त्री ने पति और ग्रामीण स्त्री–पुरुषों की कटूक्तियों को जहर की भाँति पी पीकर अपना पृथक रास्ता तयकर, अपनी बेटी को उस गन्दे सामाजिक माहौल से पृथक माहौल देकर उसे एक तपस्वी समाज सेविका के रूप में देखना चाहा, तो शायद गलत न था, तो वही बेटी मैत्रेयी के अपने प्रबल तर्क व अनुभव कार्य करते हैं। बेटी मैत्रेयी ने बचपन से युवावस्था तक जो भोगा, वह कम त्रासद न था और शायद माँ को भी उसके उन विकट कष्टों की उतनी अनुभूति न थी, जो मैत्रेयी ने लड़कपन से लेकर यौवनकाल तक हर वर्ग और हर जाति के पुरुषों द्वारा शारीरिक शोषण के रूप में भोगा और दिल को चीर देने वाली गालियाँ खाईं थीं, तो वहीं माँ कस्तूरी ने भी अपने से तथा गैरों से सम्पूर्ण अस्तित्व को जार–जार कर देने वाली गालियाँ और हृदय को छिन्न–भिन्न कर देने वाले कटु वचनों को सुनकर भी अपनी पढ़ाई का मार्ग तय कर एक एक धीर–गम्भीर ग्राम सेविका (संयोजिका के रूप में) अपनी साख बनायी।

बेटी मैत्रेयी, माँ के इस नीरस जीवन–यापन से बाहर निकल स्वच्छन्द जीवन–यापन करना चाहती है। अतः बी.ए. में पढ़ती लड़की स्वयं अपनी माँ से अपने विवाह की बात करती है, जिसे सुन माँ को गहरा धक्का लगता है, क्योंकि मैत्रेयी को लेकर उसके पृथक सपने थे। अतः माँ उसे समझाने का भरसक प्रयास करती हैं तथा विवाहोपरांत आने वाली समस्याओं की कठिनाइयों को बतलाती हैं। परन्तु माँ की यही समझदारी भरी सोच मैत्रेयी को उनका घोर विरोधी बना देती है। बेटी सोचती है कि माँ नहीं चाहती कि बेटी प्यारा–सा वैवाहिक जीवन व्यतीत करे, उसका भी अपना घर हो, पति हो, बच्चे हों और सबसे बड़ी बात की जहाँ इनकी (माँ) छाया भी न पड़े। वह तो बस चाहती है कि उसी की तरह सफेद साड़ी पहनकर, झोला लटकाये, चेहरे पर गंभीरता पोते आजीवन नीरस जीवन व्यतीत करने को बाध्य हो। और उसका मन माँ के प्रति घृणा से भर जाता है। मैत्रेयी के विवाह की सोच में माँ से मुक्ति की आकांक्षा भी है। माँ–बेटी की यह विरोधात्मक स्थिति के चलते वे एक–दूसरे से सामना करने से कतराती हैं। हाँलाकि, वे दोनों एक–दूसरे के कष्टों व मानसिक स्थिति को भली–भाँति समझती हैं। फिर भी बातचीत के दौरान दोनों के विरोधात्मक की स्थिति बनी ही रहती है।

बेटी मैत्रेयी में अपनी माँ को लेकर निरन्तर अंतर्द्वन्द्व चलता रहता है तथा वह उनके विशद जीवन–यापन से सापेक्ष भी रखती है और उसे अपने द्वारा माँ को दिए मानसिक कष्टों का बोध भी है तो वहीं माँ भी अपनी बेटी को एक सुन्दर इज्जतदार व साफ–सुथरा जीवन देना चाहती है, परंतु दोनों का सामना होते ही उनका अहम् आड़े आ जाता है और न चाहते हुए भी वे दोनों एक–दूसरे के विरुद्ध तर्क–वितर्क करने लगती हैं। जहाँ माँ अपने धीर–गम्भीर रूप को

त्याग बेटी मैत्रेयी को स्वच्छन्द प्यार न करने के लिए विवश है तो वहीं बेटी भी अपने को अपनी माँ की बेटी मानते हुए अपनी जिद छोड़ने को तैयार नहीं है। जहाँ एक ओर अपनी बेटी की खुशी की खातिर एक माँ अपने समस्त सपनों की तिलाँजलि देकर अपनी बेटी के विवाह हेतु एड़ी–चोटी का जोर लगा देती है और एक बेटी के लिए सुयोग्य वर ढूँढने वाली कठिनतम समस्याओं से दो–चार होकर, विवाह के दौरान होने वाले मांगलिक रीति–रिवाजों को न चाहते हुए भी मन को गला गलाकर उन्हें निभाकर बेटी का विवाह एक डॉक्टर लड़के से सम्पन्न करा देती हैं, तो वहीं दूसरी ओर– बेटी मैत्रेयी जो अपनी माँ के बनाये नियमों विचारों रूपी व्यवस्था के कारागार से निकलने हेतु विवाह करना चाहती थीं, वहीं मैत्रेयी डॉक्टर लड़के से विवाह के पश्चात अपनी माँ के निरंतर करीब और करीब जाती हुई दिखायी देती हैं। अपने इस बदले–बदले स्वरूप से मैत्रेयी स्वयं चकित हैं। और अब विवाह व्यर्थ की वस्तु जान पड़ती है। पति का घर जेल और पति जेलर के समान जान पड़ते हैं।

ग्रामीण परिवेश से शुरू होकर यह रचना जैसे–जैसे आगे बढ़ती है पाठक के सामने स्त्री विमर्श की जटिलतायें सहजता से खुलती जाती हैं। जैसा कि मैत्रेयी जी ने स्वयं स्वीकारा है कि यह एक आत्मकथात्मक उपन्यास है। यानि उनके निजी जीवन का चित्रण। दरअसल कामयाब आत्मकथा का सार ही अपने अनुभवों को वृहद् सराकारों से जोड़ता है। और मैत्रेयी जी काफी हद तक इसमें कामयाब भी रहीं हैं। जहाँ निजी जीवन की पीड़ा का चित्रण है। वहीं राजनीतिक परिवेश को भी समेटा गया है। उपन्यास में बतलाया गया है कि किस प्रकार स्त्री की पदोन्नति व उसके अस्तित्व के खण्डन हेतु राजनीतिक षड़यन्त्र रचे जाते हैं। तथा कभी काम आने वाले सहयोगी किस प्रकार बेगाने हो जाते हैं, तथ्य से पाठक रूबरू होते हैं। आखिर में उपन्यास के अन्त में मैत्रेयी को अपनी माँ की जीवटता का अहसास होता है। और वह उनके कष्टों की अनुभूति कर जार–जार रो पड़ती है। गले का खारीपन जाता रहता है। मैत्रेयी अब स्वयं एक माँ हैं, और वह माँ निर्णय लेती है कि वह अपनी बच्ची को ढ़ेर सारा प्यार देगी जो उसकी माँ प्रत्यक्ष रूप में उसे कभी न दे सकी जिससे मैत्रेयी उन्हें अक्सर गलत समझती रहीं। जब बेटी को अपनी गलती का अहसास होता है, तो स्वयमेव उसके बंधन शिथिल हो जाते हैं। पहली बार उसे सम्पूर्ण जीवन में बंधे बंधन से मुक्ति का अहसास होता है। यहीं उपन्यास की परिणति हो जाती है।

स्त्री दुर्गा के लिए सिर्फ राजनीतिक व सामाजिक नेतृत्व ही नहीं बल्कि स्वयं स्त्री खुद कैसे जिम्मेदार है, इसे 'कस्तूरी कुण्डल बसै' किताब के माध्यम से भलीभाँति समझा जा सकता है। 'कस्तूरी कुण्डल बसै' उपन्यास यानि एक स्त्री का सामाजिक विद्रूपताओं और स्त्री जीवन पर खरी–खरी कहने का हौंसला।

**संदर्भ –**

1–कस्तूरी कुण्डल बसै–मैत्रेयी पुष्पा
2–मैत्रेयी पुष्पा से स्वयं उनके आवास पर लिये गया साक्षात्कार
3–स्व. राजेन्द्र यादव जी द्वारा पुस्तक 'कस्तूरी कुण्डल बसै' की समीक्षा

✉
**प्लॉट नं0–23 ,गली नं0–1, लेकसिटी, अशोक नगर, म. प्र.**
**9713092312**

## शोध–लेख

रितु अहलावत

# 'दोहरा अभिशाप' में अभिव्यक्त दलित स्त्री की सामाजिक स्थिति

**स्त्री** हमारे समाज या देश ही नहीं बल्कि विश्व की पूरी आबादी का बड़ा हिस्सा है। साथ ही वह हमारे जीवन का भी अत्यंत महत्वपूर्ण हिस्सा है। बावजूद इसके हमारे पितृसतात्मक समाज में वह सर्वाधिक उपेक्षा व शोषण का पात्र बनती है। समाज में स्त्री की स्थिति दोयम दर्जे की समझी जाती रही है। समाज में स्त्री के प्रति सदैव से ऐसा व्यवहार अपनाया गया जैसे उसका जन्म लेना ही अपराध हो। उसके समक्ष ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न की गयी कि उसे जन्म से ही अपना जीवन एक अभिशाप लगे। वहीं अगर स्त्री का जन्म दलित जाति में हो जाए तो यह अभिशाप दोहरा हो जाता है। ऐसी स्थिति में दलित स्त्री को दोहरी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है,एक तो पुरुषवर्चस्व का तथा दूसरा जातिवाद का। इसी पर आधारित है कौशल्या बैसंत्री का आत्मकथात्मक 'दोहरा अभिशाप'।

कौशल्या बैसंत्री का जन्म 08 सितम्बर, 1926 को हुआ। यह कथा कौशल्या जी ने 68 साल की उम्र में लिखी। इसमें उन्होंने अपने बचपन से लेकर 68 साल की उम्र तक के जीवन संघर्ष को उल्लेखित किया है। यह हिंदी भाषा में दलित महिला द्वारा रचित पहली आत्मकथा है। यह आत्मकथा अकेली कौशल्या बैसंत्री की नहीं बल्कि पूरी दलित जाति की स्त्रियों की कथा है। पुरुषवादी मानसिकता के अतिरिक्त पूरे समाज द्वारा किया जाने वाला अमानवीय व्यवहार उन्हें झेलना पड़ता है। पितृसत्तात्मक मानसिकता से ग्रसित पुरुष चाहे सवर्ण हो या दलित, स्त्री के सम्बन्ध में उनके विचार एक जैसे ही होते हैं। "एक स्त्री के दलित–बोध की पीड़ा स्त्री होने की पीड़ा के साथ मिलकर और बड़ी हो जाती है। स्त्रियों के मामले में सवर्ण पुरुषों की सोच और दलित पुरुषों की सोच में कोई अंतर नहीं।"[1] स्त्री होने के नाते कौशल्या बैसंत्री को अपने ही समाज और जाति के पुरुषों द्वारा जीवन में बाधित होना पड़ा। वे जब साइकिल से स्कूल जाती थीं तब उनकी अपनी ही बस्ती के उच्चवर्णीय लड़के उन्हें ताने कसते थे– 'ये हरिजन बाई जा रही है। दिमाग तो देखो, बाप तो इसका भिखमंगा है, और ये साइकिल पर जाती है।'[2] उन पर यह झूठा इल्जाम भी लगवाया जाता है कि यह साइकिल चोरी की है। यह सब केवल इसलिए क्योंकि सवर्णों के सामने एक दलित लड़की का साइकिल से आना–जाना इन्हें नागवार गुजर रहा था। एक दलित स्त्री को शिक्षा प्राप्त करने में किन–किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, यहाँ यह स्पष्ट हो जाता है।

कौशल्या जी की अपनी ही जाति के पुरुषों और रिश्तेदारों ने एक बंगाली लड़के के द्वारा कौशल्या जी के साथ दुर्व्यवहार करवाया। यह सब जतन उनकी शिक्षा को रुकवाने के लिए किए जा रहे थे। इस आत्मकथा में पुरुषों की स्त्रियों के प्रति रखी जाने वाली भोगवादी दृष्टि भी सामने आती है। बाबा साहिब के निकटतम सहयोगी ने कौशल्या जी के घर जाकर उनके साथ जबरदस्ती करने की कोशिश की। बजरंग बिहारी तिवारी इस विषय में लिखते हैं– "कौशल्या बैसंत्री का जीवन इस बात का प्रमाण है कि उनके व्यक्तिव निर्माण में सर्वाधिक बाधाएँ उनकी बिरादरी के पुरुषों ने ही खड़ी की। उन्होंने बेबाक शब्दों में कह दिया कि बाबा साहिब के निकटतम सहयोगी ने भी उनके साथ जबरन यौनाचार करना चाहा। उनकी बस्ती के लोगों ने ही उनका जीना मुश्किल कर दिया इसलिए उसकी पहली मुठभेड़ सवर्ण पुरुष सत्ता से नहीं, दलित पुरुष सत्ता से है।"[3]

जब वे नगरपालिका के सदस्य के पास नल लगवाने की अर्जी लेकर जाती हैं उसका विश्लेषण वे इस प्रकार करती हैं– "जब मैं जाने के लिए उठी तब उन्होंने कहा कि कल हमारे साथ सिनेमा देखने चलोगी ? मैंने कहा कि मेरा स्कूल है, मैं नहीं आ सकती। यह आदमी भी क्या चाहता था, मैं जाँच गयी थी।"[4]

मेयर भी इन्हें अपने घर आने को कहता है। परन्तु सभी पुरुष एक जैसी मानसिकता के नहीं होते इसका प्रमाण भी इसी आत्मकथा में मिलता है। अंतत वहाँ के चीफ इंजीनियर राज्याध्यक्ष ने सारी समस्या को समझा। उन्होंने कौशल्या जी के घर में नल लगवाया और उन्हें खूब मन लगा कर पढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया। कौशल्या बैसंत्री ने केवल अपने जीवन संघर्ष को ही नहीं बल्कि माता–पिता, नानी और दादी के जीवन संघर्ष को भी दिखाया है। नाना उनकी नानी पर बहुत अत्याचार करते थे। नानी के दिन–रात काम करने के बावजूद वे उन्हें पीटते थे। नानी ने इस खोखली परम्परा का वरण नहीं किया। नाना का घर छोड़कर नानी अपने बच्चों के साथ नागपुर आ जाती हैं। यह उस समय की सामाजिक मान्यताओं की तुलना में बहुत बड़ा कदम था। एक बिना पढ़ी–लिखी दलित स्त्री द्वारा इतना सशक्त कदम उठाना अत्यंत चमत्कृत कर देने वाला विषय है। नानी दृढ निश्चय के साथ इस निर्णय को निभाती हैं। यहाँ यह विचारणीय मुद्दा है कि उनकी नानी अनपढ़ होकर भी काफी कम उम्र में पति के अत्याचार न सहने और उनसे अलग रहने का निर्णय करती हैं। वहीं कौशल्या जी पढ़ी–लिखी होकर इस प्रकार का निर्णय लेने में काफी लम्बा समय लगा देती हैं। उनके पति देवेन्द्र कुमार उनके साथ सदैव दुर्व्यवहार करते तथा हर दिन उनकी बिना कारण ही पिटाई करते थे। कौशल्या जी लिखती हैं– "उसने मेरी इच्छा, भावना, खुशी की कभी कद्र नहीं की। बात–बात पर गाली, वह भी गन्दी–गन्दी और हाथ उठाना। मारता भी था बहुत क्रूर तरीके से।"[5] वे उन्हें केवल अपने उपभोग की वस्तु समझते थे। कौशल्या जी के लिए जब यह सब सहना असंभव हो गया तब उन्होंने देवेन्द्र कुमार के खिलाफ कोर्ट में तलाक के लिए अर्जी डाल दी।

कौशल्या जी ने अन्य दलित महिलाओं के जीवन के भी वेदनापूर्ण किस्से भी लिखे हैं। जैसे एक दलित पुरुष सखाराम अपनी पत्नी को निर्वस्त्र कर गधे पर बिठाकर घर से निकाल देता है। उस औरत का दोष केवल इतना था कि वह जहाँ काम करती थी वहाँ किसी पुरुष ने उसके साथ बदसलूकी की और महिला ने अपने पति सखाराम से उसकी शिकायत कर दी। सखाराम ने इसका दोषी अपनी पत्नी को ही ठहराया नतीजतन उस औरत को कुएँ में कूद–कर अपनी जान देनी पड़ी। हद तो तब हो जाती है जब उसके अपने माँ–बाप ही यह कहते हैं कि– "इसने हमारी नाक कटवाई,अच्छा हुआ कि यह कुलटा मर गयी।"[6] इस घटना से समाज का विभात्स्व चेहरा सामने आता है जो एक स्त्री को हद दर्जे तक अपमानित करता है और उसे स्वयं का जीवन नष्ट कर देने के लिए बाध्य करता है।

कौशल्या बैसंत्री बताती हैं कि किस प्रकार दलित समाज स्वयं ही अपने उत्थान के लिए आगे नहीं बढ़ता है। वे दिल्ली मेंदलित महिलाओं के लिए एक समिति बनाने का प्रयास करती हैं और घर–घर जाकर दलित महिलाओं को इस समिति का हिस्सा बनने के लिए प्रेरित करती हैं। वे सफल नहीं हो पाती जिसका कारण पुरुषवादी मानसिकता ही नजर आती है, क्योंकि जिस महिला के घर वह मीटिंग का निमंत्रण देकर आई थी, वह अगले दिन कौशल्या जी को बताती है– "बहनजी, मेरे आदमी ने आपके सामने तो कहा कि इच्छा हो तो जा सकती है, परन्तु मुझे वे कहने लगे कि ये औरतें फालतू काम करती हैं, घर बिगड़वाती हैं। अगर मैं इनका कहना नहीं मानूँगी तो ये बहुत नाराज होकर मुझे तंग करेंगे।"[7] इस प्रकार स्पष्ट है कि पितृसत्तात्मक समाज में दलित स्त्री को जागरुक बनने से दूर रखा जाता है, ताकि वह अपने अधिकारों को न जान सके और सदैव पुरुष की आज्ञाकारी बनी रहे। इस आत्मकथात्मक का उद्देश्य पुरुषों पर किसी प्रकार का आक्षेप लगाना या उन्हें शोषक के रूप में प्रदर्शित करना बिलकुल नहीं है, बल्कि समाज में पुरुषों के व्यवहार को दिखाना है। सभी पुरुष शोषक नहीं होते हैं, इसका सबसे बड़ा उदाहरण उनके अपने पिता हैं। जिन्होंने हर कदम पर उन्हें प्रोत्साहित किया तथा जीवन में पढ़–लिखकर आगे बढ़ने का हौंसला दिया। उनकी मानसिकता पुरुषवादी नहीं रही। इसी प्रकार राजध्यक्ष तथा अन्य अनेक उदाहरण भी इसमें मिलते हैं। अंत में यह संदेश भी दिया है कि हमें किसी का सहारा लेकर नहीं, बल्कि अपने उत्थान के लिए स्वयं ही आगे बढ़ना होगा। वह लिखती हैं– "आज के अनुभव से हमने सीख लिया कि अगर हम स्वाभिमान से अपनी उन्नति करना चाहते हैं, तब हमें अपने पाँव पर खड़ा होकर,अपने पर भरोसा रखकर, आगे बढ़ना होगा। हमें अपने अंदर शक्ति पैदा करनी होगी। किसी का सहारा लेकर चलने से काम नहीं बनेगा।"[8] यह सीख दलितों को विशेष रूप से दलित स्त्रियों को जीने की नयी राह प्रदान करेगी। यह आत्मकथात्मक समाज में दलित स्त्री की वास्तविक दशा और दिशा दिखाता है।

**संदर्भ–**

1. ठाकुर हरिनारायण, दलित साहित्य का समाजशास्त्र, पृष्ठ 498
2. बैसंत्री कौशल्या, दोहरा अभिशाप, पृष्ठ 61
3. तिवारी बजरंग बिहारी, 'हंस' पत्रिका, जुलाई, 2000
4. बैसंत्री कौशल्या, दोहरा अभिशाप, पृष्ठ 79
5. एन. मोहनन, समकालीन हिंदी साहित्य उपन्यास, पृष्ठ 104
6. बैसंत्री कौशल्या, दोहरा अभिशाप, पृष्ठ 73
7. वही, पृष्ठ 121,    8. वही, पृष्ठ 124

✉

**शोधार्थी, गुजरात केंद्रीय विश्वविद्यालय, गांधीनगर**

शोध–लेख

सरोज अहिरवार

# संत रैदास के काव्य में अंतर्निहित निर्गुण भक्ति

**वाराणसी** के निकट मंडूर नामक गांव में संवत् 1433 में माघ पूर्णिमा, रविवार को रैदास जी का जन्म हुआ था। रविवार को जन्म होने के कारण ही इनका नाम 'रविदास' रखा गया। उनके पिता का नाम राघव था, वह रघु के नाम से जाने जाते थे। उनकी माता का नाम घुरबिनिया था, लोग उन्हे करमा देवी भी कहते थे। रैदास माता–पिता के आज्ञाकारी पुत्र थे। बचपन से ही रैदास को परिवार में ईश्वर भक्ति का माहौल मिला। बचपन से ही उनकी रूचि प्रभु–भक्ति और साधु संतो की ओर हो गई थी।

भक्ति का मूल संबंध वेदांत से है। भक्ति के चाहे–निर्गण, चाहे सगुण कोई भी रूप हो, दोनों वेदांत निःसृत हैं। संत रैदास भी भक्त हैं... निर्गुण भक्त। सभी संतों ने बार बार सन, सनातन, सनक, सनंदन इन चारों का नाम लिया है। दूसरे नामों में है नारद, व्यास। रामचरितमानस के समान ही निर्गुण मार्ग के वक्ता भी निगम, शिव, शेषनाग हैं। संत विचारों में वेदांती हैं। किंतु वे वेदांत को पुराणों के संदर्भ में देखते हैं। पुराणों में भी वेदांत हैं। पुराणों के दार्शनिक आधार वेदांत हैं। इस प्रकार संतों को 'पौराणिक वेदांती' कह सकते हैं। संत वेदांत के उदाहरणों से जगत, जीव की स्थिति बताते हैं। जीव और ब्रह्म का संबंध सोना और उससे बने गहने एवं जल और तरंग के समान हैं। ये दोनों ही वेदांत के उदाहरण हैं।

प्रभुजी तुम चन्दन हम पानी।<br>
जाकी अंग अंग बास समानी।।<br>
प्रभुजी तुम दीपक हम बाती।<br>
जाकी ज्योति बरै दिन राती।।<br>
प्रभुजी तुम मोती हम धागा।<br>
जैसे सोने मिलत सुहागा।।

परमात्मा सब में है, सब परमात्मा में हैं। परमात्मा जिसकी संज्ञा ब्रह्म है। केवल वही हैं। केवल ब्रह्म सत्य हैं। ब्रह्म के अतिरिक्त संपूर्ण जगत नाशवान हैं।

रविदास जो करता सरिस्टि का वह तो करता एक।<br>
सभ मंहि जोति सरूप एक काहे कहूँ अनेक।।

सब स्वप्न दृश्य के समान कल्पना प्रसूत हैं। संत रैदास कहते हैं– हे माधव एक बड़ा भ्रम हैं तुम्हे जैसा कहा जाता हैं तुम वैसे हो नहीं।

माधवे का कहिए भ्रम अैसा।<br>
तुम्हं कहियत हौहु न जैसा।।<br>
नृपति एक सेज सुश सुता ।<br>
सुपनिये भया भिशारी।।<br>
अछित राज बहुत दुश पायौ।<br>
सो गति भई हमारी।।

रैदास जी कहते हैं कि हे माधव, क्या कहे भारी भ्रम है। तुम्हें जैसा कहता हूं वैसे हो नहीं। एक राजा शय्या पर सोया था। किंतु स्वप्न में भिखमंगा हो गया। भिखारी होने का स्वप्न देखकर दुखी होता है। हाय, हाय उसका राज्य चला गया। यही स्थिति हमारी हैं। नींद में स्वप्न की रचना है। जागरण में माया का भ्रम हैं। प्रत्येक व्यक्ति माया व्दारा भ्रम में हैं। भ्रमित हैं जो भी दिखता है, वह सब भ्रम है। शरीर और संसार सब कुछ भ्रम है।

जैसे माया मन रमें, तैसे नाम रमाय।
तारा मंडल बेधि के, रविदास अमरापुर जाय।।

जिस प्रकार मन माया में लिप्त है, वैसे मन में नाम को समझो इसी नाम से तारा मण्डल को भेदकर श्री रैदास जी अमरधाम पहुंच गये। सब की मन मति चंचल है चंचलता मन का स्वभाव है। मन के साथ चलने, रहने वाली बुद्धि भी चंचल है।

नर हरि ,चंचल है मति मोरी।
कैसे भगति करूँ मै तोरी।।

माया ने सब में काम, क्रोधादि को उत्पन्न कर दिया है। काम, क्रोध आदि विवयोत्पन्न है। विषयों के प्रति आकर्षण से परमात्मा में अलगाव है। वह बिषय सेवन में ही सुख मानता है। शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्श ही विषय है। विभिन्न विषय इंद्रियो को आकर्षित करते हैं। अपने स्वाद में लगाते हैं। इन्द्रियां माध्यम है–

संतौ अनिन भगति यह नाहीं।
जब लग सत रज तम वांचू गुन व्याप्त है या माहीं।।
सोई आन अंतर करै हरि संअपमारण कूं आनै।
काम क्रोध मद लोभ मोह की, पल पल पूजां ढानै।।
सकति सनेह इष्ट अंगि लायै, अस्थलि शेले।
जो कुछ मिलै जानि अषित, ज्यूं सुत दारा सिरि मेले।।
हरिजन हरि बिन और न जानै ,तपै आन तन त्यागी।
कहै रैदास सोई जन निर्मल ,निस दिन निज अनुरागी।।

संतो के सभी कर्मज्ञान (परमात्मा) प्राप्ति के लिये होते हैं। इसी से ज्ञान की प्राप्ति होने पर सभी सांसारिक कर्म नष्ट हो जाते है। कर्मनाश का विशिष्ट अर्थ है। संसार में रहते कर्म का नाश नहीं होता है। कर्म तो सदा ही चलता रहता है–

धरम हेतहिं कीजिए सौ वरस लौं कार।
रविदास करमहि धरम है फल मंहि नंहि अधिकार।।

भक्ति के लिए अभिमान को मिटाना आवश्यक है। चींटी के समान असत्य से सत्य को चुनने की क्षमता होनी चाहिए। संत रैदास उपनिषद् की कथा कहते है। संसार अथाह सागर है यहां जन्म मृत्यु की निरंतरता है। जो भी आया है वह जाएगा। एक ही परमात्मा संसार में नाना वेश धारण करता है।

सब घट मेरा सांईया जलवा रहयो दिखाई।
रविदास नगर मंह रम रहयो कबहु न इत उत जाई।।

निर्गुण भक्त जो भी करता है, अंतर में करता है। रैदास नाम को महत्व देते है। पुराणों में नाम जप को राम की प्राप्ति का सबसे सरल साधन माना गया है। नाम जप कलिकाल का सर्वोत्तम साधन है। सभी युगों के अलग अलग साधन हैं। किंतु वे सभी व्यय, श्रम साध्य हैं। उन युगो के मनुष्य दीर्घायु और अधिक साधन संपन्न होते थे। कलि में आयु कम होती हैं। इसी से नाम जप को महत्व दिया गया। रैदास भी नाम को महत्व देते हैं।

सत जुग 'सत' त्रेता, तपी , द्वापर पूजाचार।
तीनों युग तीनों दृढ़े, कलि केवल नाम आधार।।

संदर्भ–


1. रैदास समग्र– डॉ. युगेश्वर
2. संत रविदास रत्नावली –सं. ममता झा
3. .संत रविदास प्रेरणादायक जीवन चरित
4. .संत रैदास – योगेन्द सिंह
5. संत रविदास – मनीष कुमार



✉
**शोधार्थी**
**शा० कन्या महाविद्यालय, विदिशा**
**बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल (म०प्र०)**

शोध–लेख

राम सुभाष

# सिनेमा और समाज

**सिनेमा** विज्ञान का वरदान है, जो समाज को मनोरंजन प्रदान करता है। यह एक विकासशील देश के लिए सबसे सस्ता मनोरंजन प्रदान करने वाला साधन बनकर सामने आया है। सिनेमा समाज का एक अभिन्न अंग बन गया है। समाज और सिनेमा एक दूसरे को काफी हद तक प्रभावित करते हैं। "किसी भी अन्य माध्यम की तरह सिनेमा भी ऐसा माध्यम है, जिसके प्रभाव समाज में नकरात्मक व सकरात्मक दोनों ही हो सकते हैं।"[1] भारतीय सिनेमा आरंभ से भारतीय समाज का दर्पण रहा है। समाज की विभिन्न गतिविधियों को सिनेमा ने अपने ही ढंग से प्रस्तुत किया है, फिर चाहे वो विभाजन का दौर हो या स्वतंत्रता संग्राम का या फिर बॉर्डर पर युद्ध का, सभी विषयों पर फिल्मों का निर्माण किया गया है।

सिनेमा अन्य कला माधयमों से अधिक सशक्त है, क्योंकि सिनेमा दृश्य एवं श्रव्य दोनों आवश्यकताओं को पूरा करता है साथ ही समाज की गहरायी तक उतरता है। संपू.र्ा समाज इससे गहरे से प्रभावित है। दर्शकों के संस्कार को बनाने और बिगाड़ने में इसका बहुत बड़ा हाथ होता है। आरंभ में सिनेमा ग्रामीण परिवेश से जुड़ा हुआ था। संस्कारों का पूर्ण ध्यान रखा जाता था। समाज को ध्यान में रखते हुए दृश्यों और भाषा का प्रयोग किया जाता था। "राष्ट्रीय जागरण के काल में उपनिवेशवाद का विरोध तथा भावी राष्ट्र की परिकल्पना सिनेमा के प्रधान सरोकार थे। अतएव पश्चिमी संस्कृति की आलोचना, सामंतवाद और पूंजीवाद का नकार, अस्पृश्यता का प्रतिवाद, नारी शिक्षा, ग्रामीण जीवन की सादगी हिंदी सिनेमा के प्रिय विषय बने"[2] अब हमारी संस्कृति हमारी नहीं रही है। वह पॉप कल्चर बन गयी है। पॉप कल्चर भी ऐसा जिसमें भारतीय संस्कृति की केवल झलक मात्र है। "विगत सदी में पूरी दुनिया में अमेरिकी जीवन शैली छद्म मूल्यों और उपभोक्ता का प्रसार हुआ है"[3] पॉप कल्चर का प्रचार–प्रसार करने का श्रेय काफी हद तक सिनेमा को जाता है।
वर्तमान समय में सिनेमा केवल व्यवसाय को देख रहा है। समाज के सामने फिल्म के रूप में क्या परोसा जा रहा है, इससे सिनेमा को कोई मतलब नहीं है। 'ग्रैंड मस्ती', 'चश्मे बद्दूर', जैसी फिल्में जिसके संवाद दो अर्थों को प्रदर्शित करते हैं। 'गैंग्स ऑफ वासेपुर' ने तो गाली–गलोज की सीमा को ही पार कर दिया है। इस प्रकार की फिल्मों से बच्चे केवल गालियां ही सीख सकते हैं। मुझे नहीं लगता की इस प्रकार की फिल्में कुछ अच्छे उद्देश्य को पूर्ण करती हैं। पिछले कुछ सालों में हिंदी सिनेमा में काफी बदलाव देखे गये हैं। सिनेमा अब मनोरंजन से अधिक उद्योग को देखता है, इसकी हवस में उसने स्त्री को भी नहीं छोड़ा है। स्त्री वस्तु बेचने के लिए खुद अपने अंगों को वस्तु बना चुकी है। नारी की स्वतंत्रता का अर्थ ही बदल गया है, वह कम कपड़ों को ही स्वतंत्रता समझने लगी है। सिनेमा में "स्त्रियों की ताकत दिखाते हैं, उसके अधनंगेपन और नंगेपन में। टाई वाले नायक को रिझाने के लिए उसे मिनी स्कर्ट या मिनी फ्रांक पहनने का निर्देश होता है"[4]। फिल्मों में दिखाये गये अश्लील दृश्य नारी का शोषण करने का जरिया है। नारी अपने जिस्म की नुमाईश करती है, लेकिन सामान्य रूप में देखा जाये तो हीरो को हिरोइन से अधिक पारिश्रमिक मिलता है। "आज भारतीय सिनेमा और टेलेविज़न पर लगातार इल्जाम लगाया जा रहा है कि पर्दे पर दिखाई जाने वाली औरत को श्रृंगारिकता और सौन्दर्य प्रदर्शन की आड़ में पुरुषों के चाक्षुष भाग का बिम्ब बनाया जा रहा हैं। संजिदा होने के साथ–साथ यह आरोप, काफी हद तक मौजूदा हालत को लक्षित भी करता है"[5] – मर्डर, बी.ए. पास, जिस्म जैसी फिल्में समाज में अश्लीलता तो फैलाती ही हैं, साथ ही बलात्कार जैसे संगीन जुर्मों को भी जन्म देती हैं। ऐसी फिल्में देखकर कामुक पुरुष अपने शिकार की तलाश मे निकलता है और वह शिकार स्त्री बनती है।

सिनेमा ने काफी हद तक नारी को नई पहचान भी दिलाई है। नारी की अस्मिता को बनाने में सिनेमा की काफी बड़ी भूमिका है। आज की नारी पहले वाली नारी नहीं रही, अब वह अपने हक के लिए लड़ने को तैयार है। 'राजनीति' और 'आंधी' जैसी फिल्मों की नायिका ने राजनीति में उतरकर स्त्री को एक नई पहचान दी। 'मर्दानी' और 'मैरी कोम' ने नारी को एक अलग ही स्थान दिलाया है। 'मैरी कोम' एक सच्ची घटना पर आधारित फिल्म है, जिसने नारी को खेल जगत में आने के लिए प्रेरित किया है। "इस संदर्भ में यह सुखद है कि चंद हिंदी फिल्में ऐसी बनी हैं जिनमें स्त्रियाँ अपना जुझारू और संघर्षी, स्वाभिमानी और आत्मनिर्भर चरित्र लेकर सामने आई"[6] 'फैशन', 'मर्दानी', 'मेरी कोम' जैसी फिल्में अपने आप में बहुत बड़ी मिसाल हैं। सिनेमा दलित समाज के लिए एक वरदान के रूप में ही सामने आया है। सिनेमा ने दलितों को समाज में स्थान दिलाने का पूर्ण प्रयास किया है। अमीर–गरीब, छुआ–छूत आदि की खाई दूर करने में सिनेमा ने काफी हद तक सफलता प्राप्त की है। सिनेमा के अधिकतर प्रेम प्रसंगों में या तो लड़का गरीब और दलित होता है या फिर लड़की गरीब और दलित होती है। यह दोनों युवा प्रेमी जोड़े समाज से लड़ते हु, अंत में प्रेम को सफल बनाते हैं और समाज को इनके सामने झुकना पड़ता है। "कुछ फिल्में ऐसी आई हैं कि जिसमें दलित युवती फिल्म की नायिका है। ऐसी फिल्मों में सवर्ण युवक दलित युवती से प्रेम करता है तथा परिवार और समाज के विरोध का सामना करते हुए उसे अपनाता है एक सीमा तक यह सफल और सार्थक दृष्टिकोण है।[7] 'अंकुर', 'तमस', 'अछूत कन्या', 'सुजाता', 'लगान' आदि फिल्मों ने दलितों को समाज में अपना स्थान दिलाया है। 'लगान' फिल्म में नायक उस पात्र (कचरा) को क्रिकेट टीम में शामिल करता है, जो समाज द्वारा बहिष्कृत किया गया है। कचरा को पूरे गाँव में कोई छूता तक नहीं है और नायक (आमिर खान) उस को क्रिकेट टीम में मुख्य गेंदबाज के रूप में जगह देता है। वर्तमान समय में दलित अपने हक के लि, लड़ने लगे हैं, उसका बहुत कुछ श्रेय हिंदी सिनेमा को जाता है। दलितों को जागरुक करने में हिंदी सिनेमा ने बहुत बड़ी भूमिका निभाई है।

सिनेमा के नायक–नायिकाओं को आम जनता अपना आदर्श मानती है। उनके द्वारा किये गये वस्तुओं के विज्ञापन को देख कर व्यक्ति बिना सोच विचार के ही उस वस्तु को खरीद लेता है। वास्तव में वे अपने आदर्श पर भरोसा करता है। सबसे ज्यादा दुःख की बात तो यह की सिनेमा के सितारे अधिकतर विदेशी वस्तुओं का ही प्रचार–प्रसार करते हैं। इससे न केवल पूरे समाज को हानि होता है, अपितु देश की पूरी अर्थव्यवस्था को हानि होती है। सिनेमा ने भाषा को एक बाजारू भाषा बना कर रख दिया है सिनेमा में प्रयोग की जा रही भाषा समाज में बोली जा रही है, इस कारण मूल हिंदी संकट में नजर आती दिख रही है– "टपोरी न तो हिंदी है, न उर्दू और न तो हिन्दुस्तानी। वह एक ऐसी जबान बोलता है जो बम्बईया कहलाई जाती है– यानि गुजरती, मराठी, बंगला, हिन्दुस्तानी और अंग्रेजी की मिश्रण हिंदी की पवित्रता और उसकी अभिजातियता को नष्ट भ्रष्ट कर दिया है"[8] सिनेमा ने केवल समाज को विकृत करने वाली ही फिल्में नही बनाई हैं, अपितु समाज को अच्छी प्रेरणा देने वाली फिल्में भी बनायी हैं– उनमें से कुछ इस प्रकार हैं– बॉर्डर, इंडियन, सिंघम, लगान, तारे जमीन पर, थ्री इडियट्स, मैरी कोम, चक्ख दे इंडिया आदि। बॉर्डर सीमा पर लड़ते जवानों के लिए प्रेरणा स्वरुप है तो वहीं सिंघम पूरे देश की पुलिस को प्रेरित करती है। चक्ख दे इंडिया, जिसके खिलाड़ी विभिन्न समस्याओं से जूझते हुए भी विश्व चौंपियन बनती हैं। आज के खिलाड़ियों के लिए यह बहुत बड़ी प्रेरणा है।

समग्रतः यह कहा जा सकता है कि सिनेमा का समाज पर सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रकार का प्रभाव पड़ता है। एक तरफ इसने दलितों और स्त्रियों को उनका हक दिलाने का काम किया, तो वहीं इसका नकारात्मक पहलू यह है कि इसने अश्लीलता को अपना लिया है– सिनेमा ने चोरी–चकारी, धोखा–धड़ी, भ्रष्टाचार, अन्य अनेक किस्म के अपराध आदि के नए–नए तरीके अपराधियों को सुझाए हैं, तो वहीं इंडियन, बॉर्डर, सिंघम आदि जैसी फिल्में भी बनायीं हैं, जो समाज में एक अच्छी प्रेरणा प्रदत्ता सिद्ध हुई हैं।

**संदर्भ –**


1. सिनेमा के सौ बरस, सम्पादक मृत्युंजय, पृ–26
2. बॉलीवुड पाठ विमर्श के संदर्भ, ललित जोशी, पृ–118
3. टेलीविजन : संस्कृति और राजनीति, जगदीश्वर चतुर्वेदी, पृ–100
4. सिनेमा के सौ बरस, सम्पादक मृत्युंजय, पृ–301
5. बॉलीवुड पाठ विमर्श के संदर्भ, ललित जोशी, पृ–89
6. सिनेमा के सौ बरस, सम्पादक मृत्युंजय, पृ–301
7. सिनेमा के सौ बरस, सम्पादक मृत्युंजय, पृ–306
8. बॉलीवुड पाठ विमर्श के संदर्भ, ललित जोशी, पृ–82